



तिब्बत समस्या



अटल बिहारी वाजपेई

शारदा पुस्तकालय

(संजीवनी शा.दा.केन्द्र)

क्रमांक 24611

तिब्बत समस्या

अटल बिहारी वाजपेई

संपादक

शंकर शरण

प्रथम संस्करण : अप्रैल 1997
द्वितीय संस्करण : मार्च 1998
1000 प्रतियां
तृतीय संस्करण : नवम्बर 2000
5000 प्रतियां

प्रकाशक

‘ब्यूरो ऑफ एच.एच. द दलाई लामा’

10, रिंग रोड, लाजपत नगर,

नई दिल्ली-110 024

टेलीफोन : 011-6474798, 6473386

फैक्स : 011-6461914

ई-मेल : bd(L)@libet.net



तिब्बती संसदीय एवं नीति शोध केन्द्र

सी-1/1267, वसन्त कुंज, नई दिल्ली-110 070

मुद्रक :

अर्चना एडवर्टाईजिंग प्रा. लि.

787, चर्च रोड, जंगपुरा

नई दिल्ली-110 014

दूरभाष : 011-4311992, 4322834



भूमिका

तिब्बत भारतीय संस्कृति, इतिहास, धर्म, मानसिकता, परंपरा, जीवन-दर्शन और मिथक का एक अविच्छिन्न भाग सदियों से रहा है। तिब्बत की अपनी विशेष अस्मिता है। उसके विभिन्न पक्ष हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में भारत से उसका आदान-प्रदान सदियों पुराना है। वह सदैव धार्मिक और शान्ति प्रिय देश रहा है। बौद्ध धर्म और दर्शन का अनुपालन, उसका अध्ययन और अनुसंधान तथा उससे अनुप्राणित जीवन-दृष्टि तिब्बत की मानव को अनूठी देन है। उसकी धारा निरन्तर बहती रहे, कभी अवरुद्ध न हो और इसी प्रयास में सदैव कार्यरत रहने के कारण यदा कदा पाश्चात्य देशों ने तिब्बत को एक रहस्यमय देश कहा। तिब्बत की रहस्यमयता वास्तव में बौद्ध धर्म की अनूठी विशेषता है।

चीन में द्वितीय युद्ध के उपरान्त जब राज्य-परिवर्तन की तथा साम्यवादियों के सत्ता में आने की संभावनाएं स्पष्ट होने लगीं तो तिब्बत के निवासियों और अन्य देशों में भी तिब्बत के स्वतंत्र अस्तित्व के विषय में चिन्ता होने लगी। द्वितीय-युद्ध की पृष्ठभूमि में यह स्वाभाविक ही था। जब हर देश की स्वतंत्रता का स्वप्न देखा जा रहा था और राष्ट्र संघ (यूनाइटेड नेशन्स) की विश्व शांति और विकास हेतु स्थापना की गई थी, साम्यवादी चीन की विस्तारवादी नीतियाँ और तिब्बत के प्रति उसका रुख विशेष चिन्ता का विषय बन गया। किस प्रकार साम्यवादी चीन ने धीरे-धीरे तिब्बत में पैर पसारकर अधिकार कर लिया, पावन दलाई लामा को वहाँ से पलायन करना पड़ा और भारत में शरण लेनी पड़ी - यह आख्यान विश्व के इतिहास का शर्मनाक अध्याय बन चुका है।

चीन ने तिब्बत के साथ जो व्यवहार किया उससे भारत की जनता को बहुत आघात पहुंचा। तिब्बत एक पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र राष्ट्र रहा, यह इतिहास का एक ऐसा तथ्य है जिसे कभी नकारा नहीं जा सकता है। उस पर समय-समय पर बहुत कुछ लिखा गया है। पिछले चालीस-पैंतालीस सालों में भारत समेत हर देश में, बहुत अनुसंधान तिब्बती इतिहास, संस्कृति और अस्मिता के संबंध में हुआ है। उस संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। केवल श्री बी.एन. मलिक की 'चाइनीज बिट्रेयल' में प्रकाशित 'चीन का विश्वासघात' का ही उल्लेख किया जाए

प्रथम संस्करण : अप्रैल 1997
द्वितीय संस्करण : मार्च 1998
1000 प्रतियां
तृतीय संस्करण : नवम्बर 2000
5000 प्रतियां

प्रकाशक

‘ब्यूरो ऑफ एच.एच. द दलाई लामा’

10, रिंग रोड, लाजपत नगर,

नई दिल्ली-110 024

टेलीफोन : 011-6474798, 6473386

फैक्स : 011-6461914

ई-मेल : bd(L)@tibet.net



तिब्बती संसदीय एवं नीति शोध केन्द्र

सी-1/1267, वसन्त कुंज, नई दिल्ली-110 070

मुद्रक :

अर्चना एडवर्टाइजिंग प्रा. लि.

787, चर्च रोड, जंगपुरा

नई दिल्ली-110 014

दूरभाष : 011-4311992, 4322834



भूमिका

तिब्बत भारतीय संस्कृति, इतिहास, धर्म, मानसिकता, परंपरा, जीवन-दर्शन और मिथक का एक अविच्छिन्न भाग सदियों से रहा है। तिब्बत की अपनी विशेष अस्मिता है। उसके विभिन्न पक्ष हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में भारत से उसका आदान-प्रदान सदियों पुराना है। वह सदैव धार्मिक और शान्ति प्रिय देश रहा है। बौद्ध धर्म और दर्शन का अनुपालन, उसका अध्ययन और अनुसंधान तथा उससे अनुप्राणित जीवन-दृष्टि तिब्बत की मानव को अनूठी देन है। उसकी धारा निरन्तर बहती रहे, कभी अवरुद्ध न हो और इसी प्रयास में सदैव कार्यरत रहने के कारण यदा कदा पाश्चात्य देशों ने तिब्बत को एक रहस्यमय देश कहा। तिब्बत की रहस्यमयता वास्तव में बौद्ध धर्म की अनूठी विशेषता है।

चीन में द्वितीय युद्ध के उपरान्त जब राज्य-परिवर्तन की तथा साम्यवादियों के सत्ता में आने की संभावनाएं स्पष्ट होने लगीं तो तिब्बत के निवासियों और अन्य देशों में भी तिब्बत के स्वतंत्र अस्तित्व के विषय में चिन्ता होने लगी। द्वितीय-युद्ध की पृष्ठभूमि में यह स्वाभाविक ही था। जब हर देश की स्वतंत्रता का स्वप्न देखा जा रहा था और राष्ट्र संघ (यूनाइटेड नेशन्स) की विश्व शांति और विकास हेतु स्थापना की गई थी, साम्यवादी चीन की विस्तारवादी नीतियाँ और तिब्बत के प्रति उसका रुख विशेष चिन्ता का विषय बन गया। किस प्रकार साम्यवादी चीन ने धीरे-धीरे तिब्बत में पैर पसारकर अधिकार कर लिया, पावन दलाई लामा को वहाँ से पलायन करना पड़ा और भारत में शरण लेनी पड़ी - यह आख्यान विश्व के इतिहास का शर्मनाक अध्याय बन चुका है।

चीन ने तिब्बत के साथ जो व्यवहार किया उससे भारत की जनता को बहुत आघात पहुंचा। तिब्बत एक पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र राष्ट्र रहा, यह इतिहास का एक ऐसा तथ्य है जिसे कभी नकारा नहीं जा सकता है। उस पर समय-समय पर बहुत कुछ लिखा गया है। पिछले चालीस-पैंतालीस सालों में भारत समेत हर देश में, बहुत अनुसंधान तिब्बती इतिहास, संस्कृति और अस्मिता के संबंध में हुआ है। उस संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। केवल श्री बी.एन. मलिक की 'चाइनीज बिट्रेयल' में प्रकाशित 'चीन का विश्वासघात' का ही उल्लेख किया जाए

तो अनुचित नहीं होगा। लेखक न केवल प्रथम प्रधान मंत्री के एक विश्वासपात्र उच्चाधिकारी थे अपितु उनके अपने विशेष दायित्व थे। प्रधान मंत्री तथा अन्य सैनिक और असैनिक अधिकारियों से उनका घनिष्ठ संपर्क था और उनसे विचार-विमर्श होता रहता था। उस पुस्तक में तिब्बत के साथ जो विश्वासघात चीन ने किया और जिस प्रकार भारत की सरकार अपने सिद्धान्तों, मानवीय आदर्शों से ही नहीं डगमगा गई वरन् भारत के अपने पुराने हितों की रक्षा में भी असफल रही - यह सम्यक रूप में वर्णित है।

पर जिस भारतीय जन-मानस के आघात और आंदोलित होने की बात है, वह बड़े प्रखर रूप में परिलक्षित होती रही है। श्री अटल बिहारी वाजपेई के विचारों में जो उन्होंने तिब्बत की समस्या या उसकी स्थिति के विषय में समय-समय पर संसद में विभिन्न अवसरों पर व्यक्त किए। उन्होंने अपने दृष्टिकोण को दृढ़ता के साथ उस समय व्यक्त किया, जब नेहरू जी की विदेश-नीति और तिब्बत विषयक रुख की आलोचना करने में, कुछ व्यक्तियों को छोड़कर, लोग कतराते थे। वास्तव में उनके भाषणों में उनकी अपनी निजी आस्थाएं, उनकी पार्टी का दृष्टिकोण और भारतीय जनता की अपेक्षाएं परिलक्षित होती हैं। तिब्बत की समस्या के संबंध में और भारत-चीन संबंध के वृहद् परिप्रेक्ष्य में भी जो चर्चाएं सन् 1959 और 1989 के बीच हुईं और वाजपेई जी ने जो कहा, उसके कुछ आवश्यक भागों को सम्पादित कर, श्री शंकर शरण ने जो संकलन प्रस्तुत किया है, वह प्रशंसनीय है।

श्री वाजपेई ने न केवल तिब्बत की आजादी का प्रश्न वरन् उससे सम्बन्धित नीतियों की जहाँ आवश्यकता हुई वहाँ तथ्यात्मक आलोचना की है। जब साम्यवादी चीन दुनियां में भ्रम फैला रहा था कि उसकी सेनायें तिब्बत को मुक्त अथवा लिबरेट करने के लिए गई हैं, उन्होंने नेहरू जी को ही उद्धृत करते हुए कहा कि आजाद तिब्बत को किससे मुक्त किया जा रहा है? किसी के पास इसका उत्तर नहीं था। वाजपेई ने प्रारम्भ से ही तिब्बत के मामले को राष्ट्र संघ में उठाने पर बल दिया। चीन के बढ़ते हुये साम्राज्यवादी पंजे और भारत भूमि पर चुपचाप कब्जा करने की चेष्टा के विरुद्ध चेतावनी दी। सभी सम्भावित समस्याओं की ओर उन्होंने ध्यान दिलाया। विश्व के बदलते समीकरणों में किस प्रकार की कूट नीति और विदेश नीति गत्यात्मक और तथ्यपरक हो, उस ओर संसद और सरकार का ध्यान आकर्षित किया। किस प्रकार कम्युनिस्टों की नीति देश की सुरक्षा और तिब्बत के सम्बन्ध में घातक रही है उन्होंने उसका पर्दाफाश किया। प्रारम्भ से लेकर भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव की यात्रा और उसके फलस्वरूप रिश्तों में जो सुधार की बात कही गई, उसका खोखलपन भी उन्होंने उद्घाटित किया। उनके भाषणों से जो इस पुस्तिका में सम्मिलित

किया गये हैं, उनसे हमारी विदेश नीति पर एक समवेत प्रकाश पड़ता है। यह प्रायः कहा जाता है कि वाजपेई जी की जिह्वा पर सरस्वती विराजती हैं पर श्री वाजपेई के भाषण न केवल हमारी भावनाओं को छूते हैं प्रत्युत वे ऐसे बौद्धिक तर्कों और ऐतिहासिक विश्लेषण पर आधारित हैं कि उनसे किसी का भी ज्ञानवर्धन हो सकता है। वे किसी पर सारहीन आरोप नहीं लगाते। दूसरे के दृष्टिकोण पर सम्यक् ध्यान देकर अपने पक्ष को कुशलता से प्रस्तुत करते हैं। श्री वाजपेई की जन प्रियता केवल उनके विदेश मंत्री या प्रधान मंत्री होने के कारण नहीं है। जनता के स्नेह और आदर का कारण है - जनता की भावनाओं, आशाओं और आकांक्षाओं से सहज स्वाभाविक रूप से अपने को जोड़ना और आत्मसात करना। इस बात का भी प्रत्यक्ष उदाहरण इन छोटे-छोटे अंशों में दिखाई देता है।

पिछले वर्षों में तिब्बत की समस्या और जटिल होती गई है। तिब्बत की समस्याओं से चाहे वे मानवाधिकार का हनन हो, नदियों की धाराओं को बदलने का प्रयास हो, जंगलों को काटने, अणु प्रशिक्षण और प्राक्षीरियों का उपभोग अथवा अणु शस्त्रों के कारण प्रदूषण हो, भारत की सुरक्षा और पर्यावरण के मामले जुड़ गये हैं और भारत में चिन्ता होना स्वाभाविक है। खेद है कि चाहे पहले चीन के राष्ट्रपति की भारत की यात्रा हो, जो मूलभूत शंका और समस्यायें हमारे देश की हैं, उन पर सरकार ने ध्यान नहीं दिया। 27 अप्रैल 1989 को राज्य सभा में श्री अटल बिहारी वाजपेई जी ने जो कहा वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है। उन्होंने अपने भाषण के दौरान कहा, “श्री दलाई लामा के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है, उस परिवर्तन का पीकिंग में स्वागत होना चाहिये। लेकिन तिब्बती अपनी पहचान के लिये, अस्मिता के लिये लड़ रहे हैं। चीन में सांस्कृतिक क्रान्ति के दिनों में जो गलतियाँ हुई थीं, घरेलू मामलों में जो भूलें हुई थीं, उनको सुधारने का प्रयत्न हो रहा है। चीन को चाहिये कि विदेशी मामलों में उन्होंने जो गलतियाँ की थीं, उन्हें सुधारें। इस ओर हमें उन्हें प्रवृत्त करना चाहिए। लेकिन अगर तिब्बत के बारे में मौन धारण करके बैठे रहे तो न हम तिब्बत के साथ और न अपने साथ न्याय करेंगे।”

इस संकलन के सम्पादक श्री शंकर शरण अपने स्तुत्य प्रयास के लिए साधुवाद के पात्र हैं। मुझे आशा और विश्वास है कि इस पुस्तिका से एक महत्वपूर्ण ज्वलन्त प्रश्न के सम्बन्ध में श्री अटल बिहारी वाजपेई के विचार जनसाधारण को सरलता से उपलब्ध होंगे।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(सदस्य, राज्य सभा)

1 जनवरी 1997

हमारी चीन नीति की तलाश

भारतीय विदेश नीति के संदर्भ में इधर 'गुजराल सिद्धांत' चर्चा में आया था। इसका सरल अर्थ यह है कि भारत को अपने छोटे-छोटे पड़ोसी देशों के प्रति उदार और भलमनसाहत का व्यवहार रखना चाहिए। इस सिद्धांत में एतराज की कोई बात नहीं है।

किन्तु वास्तविक मुद्दा यह है कि भारत के संबंध एशिया, यूरोप और अमेरिका इत्यादि बड़े और महत्वपूर्ण देशों के साथ किस आधार पर हैं। विश्व परिदृश्य में मायने रखने वाले उन देशों के लिए गुजराल सिद्धांत में कोई बात नहीं है। यह हमारी चिन्ता का विषय होना चाहिए।

फिर भारत के छोटे पड़ोसियों में वह भी हैं जो किसी बड़े पड़ोसी के चंगुल में हैं और उनके हितों के लिए कार्यरत हैं। यह कोई छिपी बात नहीं है कि म्यानमार (बर्मा) की सैनिक सत्ता और चीनी सरकार के बीच कैसी रणनीतिक साझेदारी है। भारत ने म्यानमार के लिए मैत्री भाव दिखाया है, पर वहां की सरकार इससे उदासीन है। भारत के पूर्वोत्तर राज्यों के विद्रोही एवं उग्रवादी अक्सर अपनी हिंसक कार्रवाइयों के बाद म्यानमार में जा छिपते हैं जहां उन्हें संरक्षण मिलता है।

चीन की बात जब भी आती है तो भारत सरकार एक अजीब सा मौन धारण कर लेती है। कई दशकों से चीन प्रत्यक्ष रूप से और पाकिस्तान तथा म्यानमार जैसे पड़ोसियों के माध्यम से भारत को रणनीतिक और कूटनीतिक रूप से बाँधने में सन्नद्ध है। तिब्बत में चीन ने भारत की ओर रुख करके मिसाइलें लगा रखी हैं। बीच-बीच में उत्तर पूर्व की भारतीय सीमा में चीनी टुकड़ियाँ घुस कर दूर-तक चली जाती हैं ताकि भारत की तैयारी क्या है, इसका कुछ पता नहीं चलता। इस परिस्थिति में लंदन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स के अध्यापक गौतम सेन की भविष्यवाणी है कि आने वाले वर्षों में चीन भारत पर आक्रमण करके इसे छिन्न-भिन्न करने वाला है।

तो क्या हम इतिहास से कोई सबक नहीं सीखेंगे? क्या इसी लिए वह अपने आप को दुहराता रहता है?

यह पुस्तिका भारत-चीन संबंधों के पिछली आधी शताब्दी के इतिहास के कुछ महत्वपूर्ण पन्ने हैं। इनमें भारत के सबसे अनुभवी राजनीतिज्ञ माननीय अटल बिहारी वाजपेई जी के कुछ चुने हुए वक्तव्यों का संकलन है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में भारत-चीन संबंधों की स्थिति समझने में यह संकलन बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। वाजपेई भारत के विदेश मंत्री और प्रधान मंत्री रह चुके हैं। विदेश मंत्री के रूप में 1978 में

उन्होंने चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए पीकिंग की यात्रा भी की थी। परन्तु उसी बीच चीन ने वियतनाम पर आक्रमण करके, इनके प्रयास पर पानी फेर दिया।

अब भारतीय संसद में और भारतीय जनता में अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों की चर्चा बहुत कम होती है। जबकि यह एक ऐसा विशिष्ट विषय है जो सभी भारतीयों को दलगत भेदभाव से ऊपर उठकर विचार करने के लिए प्रेरित करता है। भारत की चीन के प्रति उपयुक्त नीति की तलाश आज एक ज्वलंत प्रश्न है जिसकी अनदेखी राष्ट्रीय अखण्डता की कीमत पर ही हो सकती है। इस प्रश्न पर ध्यान आकृष्ट करने के लिए वाजपेई जी के विचार एक सशक्त पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं जिसके आगे पाठक स्वयं विचार-विमर्श बढ़ाने में समर्थ होंगे।

संपादक

अनुक्रमणिका

1.	तिब्बत की आजादी	1
2.	तिब्बत, संयुक्त राष्ट्र और भारत	6
3.	भारत की तिब्बत नीति	12
4.	साम्राज्यवादी नया चीन	16
5.	चीन की खलनीति	19
6.	भारत की भावना	23
7.	लद्दाख में घुसपैठ	26
8.	कम्युनिष्ट का प्रचार	30
9.	चीन और संयुक्त राष्ट्र संघ	34
10.	राष्ट्र पर संकट	37
11.	क्या लेन-देन संभव है?	40
12.	कम्युनिष्टों की निष्ठाएं	42
13.	भारत की विदेश नीति	44
14.	चीन के साथ बातचीत	47
15.	विश्व राजनीति में परिवर्तन	49

1. तिब्बत की आजादी

जब से चीन में कम्युनिष्ट शासन आया, च्यांग-काई-शेक के साथ बड़े मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होते हुए भी भारत ने नये चीन का स्वागत किया और संसार के राष्ट्रों में उसे सम्मान का स्थान मिले, इसके लिये हमने उनसे बढ़ कर प्रयत्न किया। हमारे प्रयत्नों को देखकर कभी-कभी ऐसा लगा कि मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त है। (हमने चीन की वकालत की क्योंकि हम समझते थे कि कम्युनिज्म से हमारा मतभेद होते हुए भी, यदि चीन की जनता उस मार्ग का अवलम्बन करती है तो यह उसकी चिंता का विषय है और भिन्न-भिन्न जीवन पद्धतियों के होते हुए भी भारत और चीन मित्रता के साथ रह सकते हैं।)

लेकिन इस मित्रता को पहला आघात उस दिन लगा जब तिब्बत को चीन की सेनाओं ने 'मुक्त' किया। हमारे प्रधान मंत्री ने उस समय पूछा था कि तिब्बत को किससे मुक्त किया जा रहा है, तिब्बत किसी देश का गुलाम नहीं था। भारत तिब्बत का निकटतम पड़ोसी है। अतीत के इतिहास में अगर हम चाहते तो तिब्बत को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न कर सकते थे लेकिन आज जो चीन के नेता भारत पर विस्तारवादी होने का आरोप लगाते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि हमने कभी भी तिब्बत को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न नहीं किया। तिब्बत छोटा है लेकिन हमने उसके पृथक अस्तित्व का समादर किया। हमने तिब्बत की स्वतंत्रता का सम्मान किया और हम आशा करते थे कि चीन भी ऐसा ही करेगा लेकिन कम्युनिष्टों के तरीके अलग होते हैं। उनके शब्दों की परिभाषायें अलग होती हैं। जब वह गुलाम बनाना चाहते हैं तो कहते हैं कि हम मुक्त करने जा रहे हैं। आज जब वह दमन कर रहे हैं तो कहते हैं कि सुधार करने जा रहे हैं। अगर कहीं सुधार करना है तो जिन्हें सुधारना है उनमें सुधार की प्रवृत्ति पैदा होनी चाहिए। सुधार ऊपर से नहीं लादा जा सकता।

लेकिन तिब्बत में जो कुछ हो रहा है, वह सुधार नहीं है। 1950 के समझौते के अन्तर्गत तिब्बत की स्वायत्तता का चीन द्वारा समादर किया जाना चाहिए था, लेकिन चीन ने तिब्बत के अन्दरूनी मामलों में दखल दिया, चीन से लाखों की संख्या में चीनी तिब्बत में ला कर बसाये गये जिससे तिब्बतवासी अपने ही देश में अल्पसंख्या में हो जायें और आगे जाकर तिब्बत चीन का अभिन्न अंग बन जाए। नये मजहब की शिक्षा प्राप्त करने के लिये, तिब्बत से हजारों नौजवानों को चीन में भेजा गया, लेकिन जब वे लौट कर आये और चीनी नेताओं ने देखा कि उन पर असर नहीं

हो रहा है और उनका तिब्बती रंग नहीं मिटाया जा सकता, उनकी पृथक्ता कायम रहती है और अपनी जीवन-पद्धति की रक्षा करने का उनका उत्साह अमिट रहता है तो उनके कान खड़े हुए और उन्होंने तिब्बत की जीवन-पद्धति को मिटाने का प्रयत्न किया। वर्तमान संघर्ष एक बड़े राष्ट्र द्वारा एक छोटे राष्ट्र को निगलने की इच्छा के कारण उत्पन्न हुआ है।

तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार कर भूल की

मेरा निवेदन है कि हमने जब तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार की तो हमने बड़ी गलती की। वह दिन बड़े दुर्भाग्य का दिन था। लेकिन गलती हो गयी और हम शायद यह समझते थे कि यह मामला हल हो जायेगा, नया संघर्ष पैदा नहीं होगा और हम दूसरों को मौका नहीं देना चाहते थे कि वे हमारे और चीन के मतभेदों का लाभ उठाये। लेकिन परिणाम क्या हुआ? चीन ने केवल तिब्बत के ही साथ हुए समझौते को नहीं तोड़ा, बल्कि उस समझौते की पृष्ठभूमि में भारत के साथ जो समझौता हुआ था, उसका भी उल्लंघन किया। पंचशील की घोषणा कहां गयी? जो पंचशील के दावे करते हैं, उनका कहना है कि पंचशील के अन्तर्गत लोकतंत्र और अधिनायकवाद साथ-साथ जीवित रह सकते हैं। अगर कम्युनिष्ट साम्राज्य के अन्तर्गत तिब्बत के धर्म प्रिय और शान्ति प्रिय लोग अपनी विशिष्ट जीवन-पद्धति की रक्षा नहीं कर सकते, तो यह कहना कि इतने बड़े संसार में कम्युनिज्म और डिमॉक्रेसी साथ-साथ रह सकते हैं, इसका कोई अर्थ नहीं होता। हम चीन के अन्दरूनी मामलों में दखल नहीं देना चाहते मगर तिब्बत चीन का अन्दरूनी मामला नहीं है। चीन बंधा हुआ है तिब्बत की स्वायत्तता का समादार करने के लिये, तिब्बत के अन्दरूनी मामलों में दखल न देने के लिए। लेकिन वह समझौता टूट गया और मैं समझता हूं कि अब भारत और भारत सरकार को भी अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करना चाहिए। समझौते दोनों तरफ से चलते हैं, दोनों तरफ से पालन होते हैं। अगर चीन ने समझौता तोड़ दिया तो हमें अधिकार है कि हम अपनी परिस्थिति पर फिर से विचार करें। क्या कारण है कि तिब्बत की जनता को उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया जा रहा है?

तिब्बत क्यों स्वतंत्र नहीं रह सकता? कहते हैं कि पहले स्वतंत्र नहीं था तो क्या जो देश पहले स्वतंत्र नहीं था, उस को स्वतंत्र होने का अधिकार नहीं हो सकता? क्या जहाँ पहले गुलामी थी, वहाँ अब भी गुलामी रहनी चाहिए? अगर अल्जीरिया की स्वतंत्रता की आवाज का हम समर्थन कर सकते हैं और वह समर्थन करना फ्रांस के

अन्दरूनी मामलों में दखल देना नहीं है तो तिब्बत की स्वतंत्रता का समर्थन चीन के अन्दरूनी मामलों में दखल कैसे हो सकता है? अभी मेरे मित्र श्री खडिलकर ने कहा कि देश में कोई भी ऐसी पार्टी नहीं है जो तिब्बत की स्वतंत्रता का समर्थन करती है। मैं उनसे अपना मतभेद प्रकट करना चाहता हूँ। मैं एक छोटी-सी पार्टी का प्रतिनिधि हूँ, लेकिन हमारी पार्टी तिब्बत की स्वतंत्रता की हिमायत करती है। तिब्बत की आजादी की आवाज कितने लोग उठाते हैं, इससे यह आवाज सही है या गलत, इसका निर्णय नहीं हो सकता। चीनी साम्राज्यवादी अपने पशुबल के द्वारा तिब्बत की स्वतंत्रता की आवाज को आज दबा सकते हैं, मगर स्वतंत्रता की पिपासा को मिटाया नहीं जा सकता। दमन उस आन्दोलन में आग में घी का कार्य करेगा और आज नहीं तो कल तिब्बत की जनता अपनी स्वतंत्रता को प्राप्त करके रहेगी।

मगर प्रश्न यह है कि हम उसके लिये क्या कर सकते हैं? मैंने निवेदन किया कि हमने 1950 में गलती की। अब हमें उसका दण्ड भुगतना पड़ रहा है। लेकिन समय है प्रायश्चित्त करने का, गलती को पहचानने का। मैं प्रधान मंत्री जी से इस बात की आशा करता हूँ कि वह इस अवसर पर देश की करोड़ों जनता का सही प्रतिनिधित्व करेंगे। मुट्ठी-भर हमारे मित्रों को छोड़ कर सारा भारत इस प्रश्न पर एकमत है कि तिब्बत में जो कुछ हो रहा है, वह नहीं होना चाहिए। लेकिन क्या सहज सम्भव है कि तिब्बत चीनी राज्य के अन्तर्गत अपनी स्वायत्तता का उपयोग कर सके? मुझे तो लगता है कि कम्युनिष्ट पद्धति और स्वायत्तता दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं। कम्युनिष्ट राज्य में स्वायत्तता नहीं हो सकती। माओ-त्से-तुंग ने 1930 में कहा था कि हमने ऐसा संविधान बनाया है कि अगर कोई हमसे बाहर जाना चाहेगा, तो बाहर जा सकेगा। तिब्बती तो बाहर जाने की बात नहीं करते थे। वे तो अपना पृथक् अस्तित्व रखना चाहते थे, मगर उन्हें इसकी भी इजाजत नहीं दी गई।

उन्होंने यह भी कहा कि हम ऐसे फूल को खिलता हुआ देखना चाहते हैं जिसमें हजारों पंखुड़ियाँ होंगी। हजारों की तो बात अलग रही, तिब्बत की कोमल कली को भी कुचला जा रहा है। जो तिब्बत में साम्राज्यवादी बन कर बैठे हैं, वे हम पर आरोप लगा रहे हैं। हमने कभी तिब्बत को भारत में मिलाने का प्रयत्न नहीं किया। हमने जहाँ चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान देने की वकालत की थी, वहाँ हम तिब्बत को भी स्थान देने की वकालत कर सकते थे। यूक्रेन सोवियत संघ का अंग है, मगर वह संयुक्त राष्ट्र संघ में अलग स्थान पर बैठा है। तो क्या तिब्बत चीन के साथ होते हुए भी संयुक्त राष्ट्र संघ में इसका अलग स्थान नहीं हो सकता? मगर हमने चीन की मित्रता के लिए ऐसा नहीं किया। हमें उस मित्रता का क्या प्रतिफल मिला?

हम मित्रता आज भी चाहते हैं, मगर उस मित्रता का महल तिब्बत की आजादी की लाश पर नहीं खड़ा किया जा सकता। अन्याय को देखकर हम आँखें बन्द नहीं कर सकते। यह भारत की परम्परा रही है और इसी परम्परा में हमारे प्रधान मंत्री ने देश की विदेश नीति का संचालन किया है कि जहाँ कहीं अन्याय होगा, मानवता का हनन होगा, अत्याचार होगा, हम अपनी आवाज उठायेंगे, हम सत्य की भाषा को बोलेंगे और निर्भीक होकर हम पद दलित होने वाले के अधिकारों का संरक्षण करेंगे। आज तिब्बत कसौटी है - नेहरू जी की नीतिमत्ता की, तिब्बत कसौटी है - भारत सरकार की दृढ़ता की, तिब्बत कसौटी है - चीन की पंचशील-प्रियता की। पंचशील की घोषणायें करने से, पंचशील की जो भावना है, उसका आदर नहीं होगा। पंचशील की कसौटी आचरण है। हमारे प्रधान मंत्री कितना भी संयम से काम लें, लेकिन अगर उससे तिब्बत की समस्या हल नहीं होती, तो हमें मानना पड़ेगा कि उस नीति में थोड़ी-सी दृढ़ता, थोड़ी-सी सक्रियता लाने की आवश्यकता है।

दलाई लामा तिब्बत में रहें, या जायें, यह कोई बड़ा सवाल नहीं है। यह तो तिब्बती आपस में तय करेंगे। लेकिन तिब्बत एक कसौटी है - बड़े राष्ट्र द्वारा छोटे राष्ट्र को निगलने की। अगर छोटे देश इस तरह से निगले जायेंगे तो संसार की शांति कायम नहीं रह सकेगी। दक्षिण-पूर्वी एशिया में अनेक देश ऐसे हैं जिनमें चीनी बहुसंख्या में निवास करते हैं। तिब्बत के कारण उन सब देशों में एक आशंका की लहर उत्पन्न हो गई है। जहाँ तक भारत का सवाल है, हम पर तो चीन की शनि-दृष्टि दिखाई देती है। चीन के नक्शों में हमारा प्रदेश उनका बताया गया है। चीन के कम्युनिस्टों ने च्यांग-काई-शेक को तो निकाल दिया, मगर उनके नक्शों को रख लिया। अगर वे चाहते तो नक्शों को भी निकाल सकते थे। हमारे कम्युनिष्ट दोस्तों ने तो यह नक्शे देखे ही नहीं हैं। मुझे उनकी बात पर विश्वास नहीं होता। लेकिन यह चीन का भारत पर अप्रत्यक्ष आक्रमण है। उत्तर प्रदेश के दो स्थानों पर चीनी कब्जा जमा कर बैठे हैं। ये घटनायें आने वाले संकट की ओर संकेत करती हैं। हमें आतंकित होने की आवश्यकता नहीं है, मगर हमें दृढ़ नीति अपनानी चाहिए।

मैं एक और निवेदन करूंगा। दलाई लामा भारत में आये हैं। वे स्वतंत्रता के लड़ाकू हैं, अपने देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं, जिसके कारण उनको अपना देश छोड़कर भारत में आना पड़ा है। मैं चाहता हूँ कि उन्हें अपने देश की स्वतंत्रता की लड़ाई भारत में चलाने का अधिकार होना चाहिए। उनके ऊपर जो बन्धन लगाये गये हैं, वे यद्यपि सुरक्षा के लिए हैं, लेकिन उन बन्धनों को ढीला करने की आवश्यकता है। अगर हमारे देशभक्तों ने अंग्रेजी राज्य के दिनों में दूसरे देशों में

जाकर भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न किये और हमारी आँखों में सम्मान का स्थान प्राप्त किया है। तो कोई कारण नहीं कि दलाई लामा को भी इस बात की छूट न दी जाए।

दलाई लामा अगर चीन के साथ समझौता करने में सफल हों और हमारे प्रधान मंत्री इस सम्बन्ध में कोई मध्यस्थता कर सकें तो इससे बढ़कर देश की जनता को कोई और आनन्द प्राप्त नहीं होगा। लेकिन अगर चीन के नेताओं को सीधी राह पर नहीं लाया जा सकता, राजनीतिक या कूटनीतिक दबाव से उन्हें नहीं समझाया जा सकता और बर्मा, लंका और इण्डोनेशिया के जनमत को जागृत करके, संगठित करके, प्रभावी रूप से उसका प्रकटीकरण करके, अगर चीन पर असर नहीं डाला जा सकता, तो भारत के सामने इसके सिवा कोई विकल्प नहीं रहेगा कि हम दलाई लामा को छूट दे दें कि वह अपने देश की आजादी के लिए प्रयत्न करें।

भारत के नौजवान तिब्बत की स्वतंत्रता को अमूल्य समझते हैं - इसी लिए नहीं कि तिब्बत के साथ उनके घनिष्ठ संबंध हैं, अपितु इसी लिए कि हम गुलामी में रह चुके हैं, हम गुलामी का दुख और दर्द जानते हैं, हम आजादी की कीमत जानते हैं - उन्हें कार्य करने की स्वतंत्रता दी जाए। तिब्बत की जनता अगर आजादी के लिए संघर्ष करती है तो भारत की जनता उसके साथ होगी। हम अपनी सहानुभूति उनको देंगे और हम चीन से भी आशा करें कि वह साम्राज्यवाद की बातें न करे। साम्राज्यवाद के दिन लद गये हैं। किन्तु यह नया साम्राज्यवाद है। इसका खतरा यह है कि यह एक क्रान्ति के आवरण में आता है, यह इन्कलाब की पोशाक पहन कर आता है, यह नई व्यवस्था का नारा लगाता हुआ आता है, मगर यह है उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद। अतीत में हम गोरों के साम्राज्यवाद से लड़ते रहे लेकिन अब यह पीलों का साम्राज्यवाद विश्व की छत पर भी प्रकट हो रहा है। हमें दृढ़ता के साथ उसका भी मुकाबला करना चाहिए।

(लोकसभा, 8 मई 1959)

2. तिब्बत, संयुक्त राष्ट्र और भारत

महोदय, मैं प्रस्ताव रखना चाहूंगा कि “इस सदन की राय है कि सरकार को तिब्बती मसले को संयुक्त राष्ट्र संघ में भेजना चाहिए।”

महोदय, संयुक्त राष्ट्र की आम सभा की बैठक 15 सितम्बर 1959 को होने जा रही है। भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र में चीन को शामिल करने के सवाल को उठाने का निश्चय किया है। इस प्रस्ताव से मैं चाहता हूँ कि सदन सरकार को सुझाव दे कि तिब्बती मसले को भी संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया जाना चाहिए।

भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रबल समर्थक रहा है। इस परमाणु युद्ध के खतरे की छाया में रह रही दुनिया में सिर्फ वही आशा की एक किरण है। हमने हमेशा कहा है कि अंतरराष्ट्रीय झगड़ों को वार्ताओं द्वारा सुलझाया जाना चाहिए, शक्ति का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए और सभी विवाद बातचीत से सुलझाए जाने चाहिए।

अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में हमने झगड़ रहे विभिन्न गुटों से अलग स्वतंत्र नीति अपनाई क्योंकि हम समझते हैं कि न सिर्फ हमारे देश के श्रेष्ठ हितों में बल्कि विश्व शांति के हित में भी यही एकमात्र सही नीति है। इस नीति से भारत ने कुछ प्रतिष्ठा हासिल की है। हमारी इज्जत है। जब दुनिया की जनता मुसीबत में होती है, तो वह हमारे प्रधान मंत्री की ओर देखती है, इसी लिए नहीं कि हम सैन्य दृष्टि से शक्तिशाली हैं, इसी लिए नहीं कि हमारे पास हथियार हैं, बल्कि इसी लिए कि हमने अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में नैतिक समझ पर आधारित नीति अपनाई है। भारत ने जो नैतिक शक्ति अखिरकार कर ली है उसका तकाजा है कि जब भी कोई आक्रमण हो, तो हमें न्यायोचित पक्ष का समर्थन करना चाहिए और अतीत में, जब किसी देश की स्वतंत्रता पर खतरा आया, भारत चुप नहीं बैठा। किसी शक्ति से डरे बिना हमने सही और न्यायोचित पक्षों का समर्थन भी किया है।

आप जानते हैं कि तिब्बत का मसला 1950 में संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया गया था, जब चीनी सेना उस देश में घुस गई थी। 25 अक्टूबर 1950 को चीनी सेनाएं तिब्बत में घुसीं और 7 नवम्बर 1950 को तिब्बत के नेताओं ने संयुक्त राष्ट्र संघ को चीनी आक्रमण के खिलाफ शिकायत भेजी। 18 नवम्बर 1950 को एल सल्वाडोर के प्रतिनिधि ने औपचारिक रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रस्ताव रखा और आम सभा में एक विशेष समिति बनाने को कहा जो इस बात का अध्ययन करे कि अकारण चीनी हमले के खिलाफ तिब्बत को मदद देने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा क्या

तरीके अपनाए। लेकिन जब संयुक्त राष्ट्र की संचालन समिति बैठी तो भारतीय प्रतिनिधि ने समिति से पूरे मसले को रद्द करने को कहा और यह आश्वासन दिया कि आगे बढ़ती चीनी सेनाएं रुक गई हैं और समिति को इस मसले पर विचार करने की जरूरत नहीं है।

भारत सरकार चाहती थी कि चीन और तिब्बत शांतिपूर्ण बातचीत से मसला हल कर लें और हमारे प्रधान मंत्री ने दलाई लामा को सलाह दी कि वह चीन के प्रधान मंत्री, जो उन दिनों भारत आये हुए थे, के आश्वासनों को देखते हुए समझौता कर लें। हमारे आश्वासन पर दलाई लामा ने चीन के साथ सत्रह-सूत्रीय समझौता कर लिया।

अब मुझे इतिहास में जाने की जरूरत नहीं है। तिब्बत में जो हुआ वह स्पष्ट है। यह स्पष्ट है कि 1951 के भारत-चीन समझौते का उल्लंघन हुआ है। दलाई लामा को देश छोड़ने और भारत में शरण लेने को मजबूर किया गया है। उनके साथ, हजारों तिब्बती हमारे देश आए हैं। तब भी, भारत सरकार को यह आशा है कि स्थिति शांत हो जाएगी जिससे विवेक के आधार पर तिब्बत-समस्या का संतोषजनक हल निकल आयेगा।

तिब्बत में जो हो रहा है वह सभी स्वतंत्रता-प्रेमियों और मानव की मर्यादा में विश्वास करने वालों के लिए बहुत पीड़ादायक है। वे तिब्बतियों के दुर्भाग्य पर आश्चर्य चकित हैं। अब यह तिब्बत की स्वतंत्रता या स्वायत्तता का सवाल नहीं रहा है। बल्कि यह सवाल बन गया है कि क्या तिब्बत का अस्तित्व बना रहेगा, क्या तिब्बत का विशेष व्यक्तित्व बना रहेगा या तिब्बत की जनता का सफाया कर दिया जाएगा? हम जानते हैं और दलाई लामा ने इसकी पुष्टि की है कि बड़ी संख्या में चीनियों को तिब्बत में बसाया जा रहा है। 50 लाख चीनियों को पहले ही बसाया जा चुका है और 40 लाख बसाये जाने की प्रक्रिया में हैं। इनके अतिरिक्त, बड़ी संख्या में सैनिक अधिकारी भी हैं।

चीन के मंसूबे

चीन का उद्देश्य है कि तिब्बतियों को उनके ही देश में अल्पसंख्यक बना दिया जाय, इस प्रकार तिब्बती व्यक्तित्व को नष्ट कर दिया जाए। यह एक नया परिदृश्य है, यह एक नये प्रकार का साम्राज्यवाद है। दक्षिण अफ्रीका को छोड़कर, पश्चिमी देशों ने, मेरा मतलब साम्राज्यवादियों ने, दूसरी जातियों को गुलाम बनाया, उन्होंने कभी भी

उन्हें उनके ही देश में अल्पसंख्यक बनाने की कोशिश नहीं कि ताकि उन्हें दुनिया के नक्शे से पूरी तरह मिटाया जा सके।

फ्रांस ने अल्जीरिया को गुलाम बनाया, लेकिन फ्रांस सरकार अल्जीरिया के विशेष व्यक्तित्व की इज्जत करती है। लेकिन ऐसा लगता है कि तिब्बत की जनता को अंदरूनी मंगोलिया के रास्ते पर चलना होगा। बाहरी मंगोलिया यद्यपि पूरी तरह स्वतंत्र नहीं है फिर भी इसका अपना कुछ है, लेकिन अंदरूनी मंगोलिया को चीन में मिला लिया गया और एक स्वतंत्र इकाई के रूप में उसका अस्तित्व समाप्त कर दिया गया। वही तिब्बत में हो रहा है। मानव अधिकार घोषणापत्र जिस पर कम्युनिष्ट चीन हस्ताक्षर करने वाला देश है क्योंकि अफ्रो-एशियाई देशों के बांडुंग सम्मेलन, जिसमें मानव अधिकार घोषणापत्र स्वीकृत हुआ था, में चीन ने भी भाग लिया था, इन मानवाधिकारों का तिब्बत में उल्लंघन हो रहा है।

विधिवेत्ताओं के अंतरराष्ट्रीय आयोग के मुताबिक, तिब्बत की जनता के स्वतंत्रता के अधिकार, जीवन और सुरक्षा के अधिकार का उल्लंघन किया गया और अभी भी उल्लंघन किया जा रहा है। तिब्बतियों से जबरन श्रम कराया जा रहा है। उनके साथ क्रूर, अत्याचारपूर्ण और अमानवीय व्यवहार किया जा रहा है। घर और एंकात के अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। देश के अन्दर घूमने और देश के बाहर जाने व वापस आने के अधिकार का उल्लंघन हो रहा है, अनइच्छुक लोगों की जबरन शादियां कराई जा रही हैं, सम्पत्ति के अधिकार का मनमाना उल्लंघन हो रहा है और धर्म व पूजा की स्वतंत्रता का योजनाबद्ध ढंग से हनन हो रहा है। यदि मानवाधिकारों का एक ऐसे देश द्वारा इस प्रकार का उल्लंघन हो रहा है जो संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल होना चाहता है तो दुनिया और विशेषकर हमारा देश मूकदर्शक नहीं रह सकता और न उसे रहना चाहिए।

मानवाधिकारों के उल्लंघन के साथ ही, विधिवेत्ताओं का अंतरराष्ट्रीय आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा है और उसके पास प्रमाण भी है, कि प्रथम दृष्टया तिब्बत को पूर्णतः या हिस्सों में एक स्वतंत्र देश के रूप में नष्ट करने और तिब्बती हितों का अंत करने की योजनाबद्ध इच्छा का मामला है। 1948 के समझौते के अनुसार आयोग ने नर संहार का प्रथम दृष्टया मामला बताया है। मैं इन आरोपों में नहीं जाऊंगा। जब तक स्वतंत्र देशों का एक आयोग तिब्बत जाकर खुद ही पता न लगा ले कि वहाँ क्या हो रहा है, तब तक कुछ नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त दलाई लामा ने कहा है कि इस आंदोलन के दौरान 65000 लोग गायब हो गये और तिब्बत की जनता को

अपने आदर्शों और सिद्धांतों के अनुसार अपने भविष्य के निर्माण का अधिकार नहीं दिया जा रहा है।

अब सवाल उठाया गया है कि चूंकि चीन संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं है, इसलिए इस मामले को उस संस्था में ले जाने से कोई लाभदायक उद्देश्य पूरा नहीं होगा। क्या मैं निवेदन कर सकता हूँ कि भारत उत्तरी कोरिया को आक्रमणकारी बताने वाले देशों में शामिल हुआ, यद्यपि उत्तरी कोरिया संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं था। तब हमने नहीं कहा कि उत्तरी कोरिया संयुक्त राष्ट्र संघ में नहीं है, इसी लिए हम एक आक्रमणकारी के रूप में उत्तरी कोरिया की निन्दा में शामिल नहीं होंगे। हम चाहते हैं कि चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल किया जाए क्योंकि हमें संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास है और हम सोचते हैं कि चीन की जनता की सरकार का कोई भी रूप रहे, क्योंकि चीन की सरकार वास्तविक सरकार है और उस देश के प्रशासन पर उसका वास्तविक नियंत्रण है। अतः चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल किया जाना चाहिए। लेकिन सब कुछ हम पर निर्भर नहीं करता। चीन वहां नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हमें तिब्बती मसले को संयुक्त राष्ट्र संघ में नहीं ले जाना चाहिए।

दूसरा मुद्दा यह उठाया गया कि तिब्बती मसले को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने से शीत युद्ध तेज होगा। जब ब्रिटेन-फ्रांस ने मिस्र पर हमला किया तो पूरी दुनिया ने उस हमले की निन्दा की और हमारे देश ने भी, यह आशंका या डर व्यक्त नहीं किया कि ब्रिटेन-फ्रांस के हमले की निन्दा नहीं की जानी चाहिए क्योंकि यह शीत युद्ध का हिस्सा बन जाएगा। तिब्बती मसले का शीत युद्ध से कोई संबंध नहीं है। यह मनुष्य के अधिकारों का मामला है। यह सवाल है कि छोटे देश इस दुनिया में रहेंगे या नहीं या उन्हें अपना अस्तित्व खोना पड़ेगा, क्या उन्हें मिटाया जायेगा? भारत का तिब्बती जनता के प्रति नैतिक दायित्व है। भारत की सुरक्षा के पहलू के साथ-साथ, हमारे तिब्बत से युगों पुराने संबंधों के लिहाज से भारत खामोश कैसे रह सकता है, जबकि हमारी आंखों के सामने ही एक देश तिब्बत की जनता के व्यक्तित्व को नष्ट कर रहा है?

मान लीजिए, भारत इस मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र संघ में नहीं उठाता है, कोई और देश इसे उठा सकता है। मैं जानना चाहूँगा कि उस स्थिति में हमारी क्या नीति होगी? हम दूसरे देशों को इस मुद्दे को उठाने से नहीं रोक सकते। हमारी सरकार की क्या नीति होगी? तिब्बती मसले के शांतिपूर्ण हल के हमारे सभी प्रयास विफल हो गये हैं।

हमारे प्रधान मंत्री की सद इच्छाओं के बावजूद चीनी कम्युनिष्ट नेता विवेक और न्याय की आवाज सुनने को तैयार नहीं हैं। इसके विपरीत, वे भारत और भारत की जनता को साम्राज्यवादी बता रहे हैं। भारत ने ब्रिटिश सरकार से हासिल हुए सीमाई अधिकारों को छोड़ दिया। हमारे प्रधान मंत्री ने भारत-चीन सीमा को मैक मोहन लाइन कहने पर आपत्ति की, वास्तव में विरोध किया, उन्होंने कहा कि वह पंसद नहीं करते, क्योंकि मैक मोहन के नाम से ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद की बू आती है। जैसा कि शेक्स पीयर ने कहा है कि नाम में कुछ नहीं रखा है। लेकिन यह दर्शाता है कि साम्राज्यवाद के खिलाफ हमारी भावनाएं कितनी गहरी हैं। पर तब भी, चीनी कम्युनिष्ट हमें साम्राज्यवादी बता रहे हैं।

चीन में भारत विरोधी प्रचार

चीनियों द्वारा भारत और भारत की जनता के खिलाफ प्रचार किया जा रहा है। एक पत्रकार ने अनुमान लगाया कि अप्रैल 23 से 30 तक, सात दिनों में, चीन ने सरकारी समाचार पत्रों, संवाद-समितियों और रेडियो के माध्यम से भारत के खिलाफ बहुत भद्दी भाषा का प्रयोग करते हुए 77 लेख, टिप्पणियाँ और संपादकीय, कुल मिलाकर 44 हजार शब्द, प्रकाशित, वितरित और प्रसारित किये। तिब्बत में रह रहे भारतीयों को परेशान किया जा रहा है। लहासा में हमारे दूतावास के सामने अभी भी पुलिस लगी हुई है। भारतीय मुद्रा को अवैध घोषित कर दिया गया है। भारत के 30,000 वर्ग मील क्षेत्र पर अब भी मान चित्रीय हमला जारी है। हमारे विरोध पत्र का जवाब तक नहीं दिया जाता। क्या हम सोचते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में चीन को तिब्बती जनता के न्यायोचित अधिकारों को स्वीकार करने के लिए मनाया जा सकता है?

दलाई लामा ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि वह और उनके अनुयायी तिब्बत में सामाजिक या आर्थिक सुधारों के खिलाफ नहीं हैं। लेकिन अब वह स्थिति गुजर चुकी है और मैं नहीं सोचता कि भारत के लिए तिब्बत पर चीनी हमले के खिलाफ विश्व-जनमत तैयार करने के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता बचा है। यद्यपि चीन संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं है फिर भी यदि भारत सरकार इस मसले को संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाती है और हम तिब्बती जनता के पक्ष में विश्व-जनमत तैयार करने की स्थिति में आते हैं, तो मुझे विश्वास है कि इससे कुछ अच्छा परिणाम निकलेगा। संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास रखने वाले एक देश के रूप में यही एकमात्र रास्ता हमारे लिए खुला हुआ है।

चीनी कम्युनिस्टों द्वारा भारत के खिलाफ जो कहा और किया जा रहा है, उसके बावजूद जब भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन को शामिल करने और उसे मान्यता देने का मुद्दा उठाया है तो मैं इसे उचित समझता हूँ कि तिब्बती मसले को भी हमारी सरकार द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में आम सभा की अगली बैठक में उठाया जाना चाहिए।

सरकार को इस मामले में सदन की इच्छाओं की जानकारी का लाभ होगा और मुझे विश्वास है कि मेरे प्रस्ताव को व्यापक समर्थन मिलेगा और सरकार इसे स्वीकार करेगी तथा एक स्वतंत्र देश के रूप में तिब्बती जनता के प्रति अपने नैतिक दायित्व को पूरा करेगी।

(लोकसभा, 21 अगस्त 1959)

3. भारत की तिब्बत नीति

तिब्बत की समस्या हमारे सामने है। पहली बार जब तिब्बत का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में उठा तो जैसा कि प्रधान मंत्री जी ने कहा है कि हमारे प्रतिनिधि ने उस समय आशा प्रकट की थी कि तिब्बत की समस्या शांति के साथ चीन से वार्ता द्वारा हल हो जायेगी, लेकिन पिछले नौ साल का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि तिब्बत की समस्या को शांति से हल करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

चीन ने तिब्बत में बल प्रयोग किया। चीन ने तिब्बत के स्वतंत्र अस्तित्व को मिटाने की कोशिश की। मैंने कहा था कि आज प्रश्न केवल तिब्बत की स्वायत्तता का या स्वतंत्रता का नहीं है, बल्कि प्रश्न यह है कि क्या तिब्बत एक पृथक देश के नाते, अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ जीवित रहेगा? यदि भारत सरकार को यह आशा है कि तिब्बत का प्रश्न शांति से हल होगा तो भारत को और इस सदन को बड़ी प्रसन्नता होती। लेकिन अभी तक के जो आसार दिखायी देते हैं, उनसे इस बात की आशा नहीं है कि आपस की वार्ताओं द्वारा अब इसको हल किया जा सकता है। प्रधान मंत्री जी ने भी अपने भाषण में इस तरह की कोई आशा प्रकट नहीं की है। हमने दलाई लामा और उनके साथियों को भारत में स्थान दिया, बहुत अच्छा कार्य किया और सब इसका स्वागत करते हैं। किन्तु क्या दलाई लामा को आश्रय देने से ही तिब्बत के सम्बन्ध में भारत का कर्तव्य पूरा हो जाता है? क्या दलाई लामा और उनके साथी कभी सम्मान के साथ तिब्बत वापस लौट सकेंगे? क्या तिब्बत की स्वायत्तता, जिसकी चीन ने गारंटी दी थी, फिर से वापस आ सकेगी? क्या तिब्बत अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकेगा? इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया गया।

प्रधान मंत्री जी ने कहा है कि उनकी नीति चीन के साथ मित्रता रखने की है। उनकी इस नीति से सारा देश सहमत है। चीन से क्या, हम पाकिस्तान से भी मित्रता चाहते हैं। दुनिया के सारे देशों से दोस्ती चाहते हैं, किन्तु सवाल यह है कि उस मित्रता का आधार क्या होगा? किस कीमत पर वह दोस्ती की जायेगी? हम फ्रांस से दोस्ती चाहते हैं, मगर इसी लिए हम अल्जीरिया की आजादी का समर्थन करने से इन्कार नहीं कर सकते। हम पुर्तगाल से भी दोस्ती चाहते हैं मगर इसके लिए हम गोवा की स्वतंत्रता की मांग को बन्द नहीं कर सकते। हम दक्षिणी अफ्रीका से भी मित्रता करना चाहते हैं, मगर इस कारण हमने दक्षिण अफ्रीका के गैर-श्वेतों का सवाल संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाने से मना नहीं कर दिया। हर वर्ष हम संयुक्त

राष्ट्र संघ में अफ्रीका में भारतीयों का प्रश्न उठाते हैं। हर वर्ष दक्षिण अफ्रीकी संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णय को नहीं मानता, मगर हम इस प्रश्न को उठाते हैं क्योंकि हम समझते हैं कि विश्व के जनमत को जागृत करने के अलावा इन सवालों को हल करने का और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

मैंने जब तिब्बत के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने का प्रस्ताव किया तो मेरा उद्देश्य स्पष्ट था कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास करते हैं। इसी लिए हमें तिब्बत के सवाल को वहाँ ले जाना चाहिए। तिब्बत के शिकायत के औचित्य में भी हम विश्वास करते हैं, इसी लिए भी हमें तिब्बत के सवाल को वहाँ ले जाना चाहिए।

अब तिब्बत के सवाल को वहाँ ले जाने से फायदा होगा या नहीं होगा, मैं समझता हूँ कि इसका निर्णय अगर हम न करें और तिब्बत के सर्वोच्च नेता श्री दलाई लामा के फैसले के अनुसार चलें तो ज्यादा अच्छा होगा। तिब्बत का भला किसमें है, क्या श्री दलाई लामा से अधिक और कोई इस बात का फैसला कर सकता है? और श्री दलाई लामा ने 30 अगस्त को अपील की है कि दुनिया के सभी सभ्य राष्ट्रों के नाम, जिनमें भारत भी आता है कि तिब्बत के सवाल को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाना चाहिए। प्रधान मंत्री जी अब मेरे प्रस्ताव को मानने से इन्कार करते हैं तो वह श्री दलाई लामा की अपील को मानने से भी इन्कार करते हैं। अगर श्री दलाई लामा समझते हैं कि तिब्बत की समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने से कुछ लाभ होगा तो मैं समझता हूँ कि भारत को उस प्रश्न को उठाना चाहिए। प्रधान मंत्री जी ने यह भी स्पष्ट नहीं किया है कि अगर और देश तिब्बत के सवाल को संयुक्त राष्ट्र संघ में लाएगा तो उस समय हमारी नीति क्या होगी। हम दुनिया के और किसी देश को यह सवाल लाने से नहीं रोक सकते। क्या हम उस समय यह कहेंगे कि यह सवाल नहीं लाया जाना चाहिए? इस सम्बन्ध में हमारा जो प्रतिनिधि मंडल जनरल असेम्बली में भाग लेने जा रहा है। उसको स्पष्ट निर्देश देना चाहिए। मुझे संदेह होता है कि हमारे प्रतिनिधि मंडल के जो नेता असेम्बली में भाग लेने जा रहे हैं वे वहाँ भारत की भावनाओं का सही प्रतिनिधित्व कर सकेंगे। एक बार पहले भी वे हंगरी के सवाल पर भारत की जनता की भावनाओं को सही रूप से प्रकट नहीं कर सके थे। प्रधान मंत्री कुछ कहते थे और हमारे प्रतिनिधि मंडल के नेता कुछ कहते थे। मुझे डर है कि तिब्बत के सवाल पर यह इतिहास न दुहराया जाए। इसी लिए अगर भारत सरकार स्वयं तिब्बत के प्रश्न को नहीं उठाती है तो जैसा कि कांग्रेस के सदस्य डा. गोहोकर ने संशोधन रखा है, अगर कोई और देश इस प्रश्न को उठाता है तो भारत को उसका

समर्थन करना चाहिए। पिछली बार हमने समर्थन नहीं किया। इसी लिए दुनियां का कोई भी देश आगे नहीं बढ़ा। आखिर तिब्बत में हमारी सबसे अधिक रूचि है, हम तिब्बत से सबसे अधिक सहानुभूति रखते हैं, तिब्बत हमारा पड़ोसी देश है।

मैं यह पूछना चाहता हूँ कि अगर तिब्बत के सवाल को किसी और देश ने उठाया तो भारत की नीति क्या होगी? मैं यह जानना चाहता हूँ कि कांग्रेस के सदस्य ने जो संशोधन रखा है, उसके सम्बन्ध में सरकार का क्या मत है? वह मेरा संशोधन नहीं है और प्रधान मंत्री जी ने उस सम्बन्ध में सरकार के दृष्टिकोण का कोई स्पष्टीकरण नहीं किया है।

तिब्बत के सवाल पर व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं, यह ठीक है, लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने के अलावा तिब्बत की समस्या का और कोई हल दिखायी नहीं देता। यह ठीक है कि वहाँ गरमा-गरम भाषण होंगे। लेकिन अगर हम संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास करते हैं और चीन संयुक्त राष्ट्र संघ में जाना चाहता है तो फिर विश्व के जनमत का चीन पर जरूर कुछ प्रभाव होना चाहिए। अब भारत के सामने एक ही रास्ता है कि हम विश्व की आत्मा से अपील करें, हम विश्व की चेतना को जगाएं। तिब्बत में होने वाले मानव अधिकारों के हनन के प्रति विश्व के जनमत को जागृत करें। और यदि कम्युनिष्ट चीन पर उसका असर नहीं होता तो हमें यह संतोष होगा कि हमने अपना कर्तव्य का पालन किया। हम जानना चाहते हैं कि भारत सरकार की तिब्बत के प्रति क्या नीति है? क्या हाथ पर हाथ रखे रहने की नीति है? क्या अनिश्चय की नीति है, असहाय की नीति है? आखिर तिब्बत की समस्या को शांतिपूर्वक हल करने के लिए हम कौन-सा कदम उठा रहे हैं? दलाई लामा को जगह देने मात्र से तिब्बत की समस्या हल नहीं हो जाती है।

मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। अभी भारत ने फैसला किया है कि हम चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में लाने के प्रस्ताव को इस बार फिर से उठावेंगे। पिछले सात वर्षों से हम इस प्रश्न को उठा रहे हैं लेकिन क्या आज की परिस्थिति में इस प्रस्ताव को हम उठाएं, इस बात की आवश्यकता है? चीन संयुक्त राष्ट्र संघ में आना चाहे, मगर जो कुछ हमारे और चीन के बीच में हो रहा है। क्या उसको देखते हुए हमें चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में जगह देने की पहल करनी चाहिए? मैं समझता हूँ कि समय आ गया है कि भारत सरकार संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन को प्रवेश दिलाने के प्रस्ताव को छोड़ दे। अगर दुनियां का कोई भी देश उस सवाल को उठाए तो हम उसका समर्थन कर दें। यदि हम तिब्बत के सवाल को उठाने को तैयार नहीं हैं तो फिर चीन जो कुछ

हमारे साथ कर रहा है, उसको देखते हुए चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश दिलाने के लिए पहल क्यों करें? चीन से मित्रता का यह अर्थ नहीं है कि वह लात मारता जाए और हम उसके चरणों को चूमते जाएं। मित्रता आत्मसम्मान के आधार पर हो सकती है। चीन आक्रमणकारी है, चीन हमारी सीमा पर प्रवेश करने आया है। हमारे दरवाजे खटखटा रहा है और प्रधान मंत्री जी कहते हैं हम सीमा के सम्बन्ध में बात करने को तैयार नहीं हैं। मैं समझता हूँ हमें अब चीन के सवाल को उठाना नहीं चाहिए। मैं इस सदन से अपील करूंगा कि वह मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करे और यह सिद्ध करे कि कुछ अन्तरराष्ट्रीय कठिनाइयों से भारत सरकार तिब्बत के सवाल को भले ही न उठा सके, मगर भारत की जनता की भावनाएं तिब्बत की जनता और दलाई लामा के साथ हैं।

(लोकसभा, 4 सितम्बर 1959)

4. साम्राज्यवादी नया चीन

चीन की आकांक्षा विस्तारवादी है। हमारे रक्षा मंत्री ने अभी कांग्रेस पार्टी की बैठक में कहा है कि चीन से हमारे 2000 वर्ष पुराने मधुर सम्बन्ध थे। लेकिन हमारे प्रधान मंत्री कहते हैं कि चीन तो शुरू से विस्तारवादी रहा है। किसकी बात पर विश्वास किया जाए, यह समझ में नहीं आता। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि जिस चीन से हमारे 2000 वर्ष के सांस्कृतिक सम्बन्ध थे वह चीन मर गया, वह चीन समाप्त हो गया, जिस चीन को हमारे उपदेशक बौद्ध भगवान बुद्ध का सन्देश ले कर गये थे उस चीन को कम्युनिष्टों ने खत्म कर दिया। जहाँ से हुवैनसांग और फाहियान मित्रता का सन्देश लेकर आये थे, वह चीन मर गया और उस चीन की चिता-भस्म के ऊपर एक साम्राज्यवादी और विस्तारवादी नया चीन खड़ा है।

पिछले वर्षों में चीन ने अपनी सीमा कितनी बढ़ाई है, इस पर हमें विचार करना चाहिए। जो मंचूरिया 1911 तक चीन पर राज्य करता था आज कहीं उसका नाम-निशान तक बाकी नहीं है। वह चीन का उत्तर-पूर्वी भाग-मात्र रह गया है। जो कभी तुर्किस्तान था वह सिंकियांग बन गया है। इनर मंगोलिया अपना अस्तित्व खो बैठा है। धर्म प्राण तिब्बत भी चीन की सर्वग्रासी क्षुधा का शिकार हो चुका है। चीन का अपना भू-भाग केवल 14 लाख वर्ग मील है, किन्तु मंचूरिया, इनर मंगोलिया, कांसू, चिंघाई, सिंकियांग तथा तिब्बत की 22 लाख वर्ग मील भूमि पर चीन ने अपना अधिकार जमा लिया है। अब उसकी गिद्ध दृष्टि भारत की 48 हजार वर्ग मील भूमि पर लगी हुई है।

एक शरणार्थी लामा ने यह सनसनी पूर्ण रहस्योद्घाटन किया है कि चीनी यह प्रचार कर रहे हैं कि तिब्बत चीन के हाथ की हथेली है और लद्दाख, भूटान, सिक्किम, नेपाल और आसाम उसकी पाँच उंगलियाँ हैं। स्पष्ट है कि यदि लद्दाख और लॉंगजू में चीन की आक्रमणात्मक कार्रवाईयों का शीघ्र प्रति-उत्तर नहीं दिया गया तो फिर चीन को बढ़ावा मिलेगा और हमारी सुरक्षा संकट में पड़ जायेगी।

आक्सार्ईचिन में चीनी सड़क

प्रधान मंत्री जी ने सम्पाददाताओं से बोलते हुए कहीं पर कहा है कि चीन ने जो आक्सार्ईचिन की सड़क बनाई है, अगर वह असैनिक कार्य के लिए उपयोग में लाई जाय तो हम उसकी इजाजत दे देंगे। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि सड़क पर जो भारत

का क्षेत्र है उसका क्या होगा? और सड़क सैनिक कार्य के लिए उपयोग में लाई जा रही है या असैनिक कार्य के लिए इसका निर्णय कैसे होगा? कौन करेगा? आज तो टोटल वार होती है। यह कहना कि यह असैनिक कार्य है या सैनिक, ऐसा कोई भेद करना सम्भव नहीं।

मैंने चीन के श्वेत पत्र को बहुत ध्यान से पढ़ा है। मैंने उसमें इस प्रश्न का उत्तर खोजने की कोशिश की है कि क्या चीन सचमुच भारत से मैत्री चाहता है और मुझे उत्तर मिला है कि नहीं। चीन भारत से मैत्री नहीं चाहता। मैं इस सम्बन्ध में सदन का ध्यान 16 मई 1959 को चीन के दूतावास द्वारा हमारे विदेश सचिव को दिये गए एक नोट की तरफ खींचना चाहूँगा। उस में लिखा है:

‘चीन इतना मूर्ख नहीं है कि वह पूर्व में संयुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिम में भारत को दुश्मन बना ले....। हम अपना ध्यान दो जगह केंद्रित नहीं कर सकते, न ही हम दुश्मनों को मित्र मान सकते हैं। यह हमारी राजनीति है।’

आगे कहा गया है :

‘... दोस्तों, हमें लगता है कि आप भी दो मोर्चे नहीं खोल सकते। क्या ऐसा नहीं है? यदि ऐसा है तो यही हमारे दोनों पक्षों का मिलन बिंदु है।’

चीन ने यह नहीं कहा है कि विश्व के लिए, 100 करोड़ जनता के विकास के लिये, भारत और चीन की प्रगति के लिये शांति आवश्यक है। चीन के लिए भारत के साथ शांति रणनीति का एक हिस्सा है। क्योंकि चीन दो मोर्चों पर लड़ना नहीं चाहता, इसी लिए भारत दो मोर्चों पर नहीं लड़ सकता, इसी लिए तुम हमारे साथ मैत्री रखो, यह तुम्हारे फायदे की बात है। मैं प्रधान मंत्री जी से पूछना चाहूँगा कि क्या यह भारत और चीन की मैत्री का रचनात्मक, भावनात्मक और विधायी आधार है? उनके लिए मित्रता एक अवसर की चीज है। सन् 1954 में उन्होंने जो पंचशील का समझौता किया, सह-अस्तित्व का नारा लगाया, उसका एक ही उद्देश्य था कि हम तिब्बत के मामले में दखल न दें तथा तिब्बत की आजादी को समाप्त हो जाने दें। शायद हमारे प्रधान मंत्री ने समझा कि अगर तिब्बत की बलि चढ़ा दी गई तो चीनी दैत्य की भूख मिट जाएगी और हमारे ऊपर कोई संकट नहीं आयेगा। मगर उन्होंने इतिहास की सीख को भुला दिया।

आक्रमण के सामने घुटने टेकने से आक्रामक की भूख मिटती नहीं है, और भी बढ़ जाती है। शायद तिब्बत के विनाश का यह परिणाम हुआ कि आज

हमारी सीमायें चीन के द्वारा आक्रमणित की जा रही हैं। भारत की मान-मर्यादा को मिट्टी में मिला कर जो लोग चीनी गणराज्य दिवस उत्सव में भाग लेने के लिए पीकिंग गये थे। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि क्या यांगत्सी में हमारे व्यापार प्रतिनिधि के विरुद्ध अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार किया जा रहा है, क्या वह चीन का भारत के प्रति मित्रता का रवैया दिखाता है? एक ओर तो रूस अपने कल के शत्रु अमेरिका से व्यापारिक संबंधों को चालू कर रहा है और दूसरी ओर चीन तिब्बत के हमारे पुराने व्यापार संबंध को हंसिये से काट कर उस पर हथौड़े की चोट कर रहा है। यह इस बात का परिचायक है कि चीन हमारे साथ मैत्री नहीं चाहता। मैं निवेदन करूंगा कि इस संकट का सामना करने के लिए हमें इस संकट की वास्तविकता और गम्भीरता को समझना चाहिए। हमारे प्रधान मंत्री ने 25 अगस्त 1959 को केरल सम्बन्धी विवाद में भाषण करते हुए कहा था कि अगर भारत की जनता कभी कम्युनिष्ट हो गयी तो भारत, भारत नहीं रहेगा। यही बात चीन पर भी लागू होती है। चीन पुराना चीन नहीं है। हमारे सामने साम्राज्यवादी का रूप खड़ा है। हमारे प्रधान मंत्री जी इतिहास के जानकार हैं, उन्होंने इतिहास लिखा है, वह इतिहास बना रहे हैं और आगे आने वाला इतिहास गौरव के साथ उनका उल्लेख करेगा। लेकिन चीन विस्तारवादी है। क्या उसका रहस्योद्घाटन अभी हुआ है, क्या हम इस बात का पता दस साल पहले नहीं लगा सकते थे? क्या हम अपनी सीमा की रक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकते थे? मुझे यह खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमने असावधानी और लापरवाही से कार्य किया। हमने अपनी शक्ति पर भरोसा करने के बजाय चीन की मित्रता पर ज्यादा भरोसा किया और आज हमें निराशा का सामना करना पड़ रहा है।

(लोकसभा, 22 नवंबर 1959)

5. चीन की खलनीति

चीन के प्रधान मंत्री का जो नया पत्र आया है उससे हमारे सामने एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। भारत के प्रधान मंत्री ने 16 नवम्बर को अपने पत्र में चीन के सामने कुछ वैकल्पिक प्रस्ताव रखे थे जिनके अनुसार चीन को लद्दाख में भारत की भूमि को खाली करके बाहर जाना था और साथ ही यह भी सुझाव दिया गया था कि उस क्षेत्र में भारत भी अपने आदमी नहीं भेजेगा। प्रधान मंत्री जी के इस सुझाव की इस सदन में आलोचना हुई थी। मैंने उसे आपत्तिजनक समझा था और कहा था कि इससे चीन को आक्रमण करने का प्रोत्साहन मिलेगा, उसे अपने पुराने दावों को पुष्ट करने का और नए दावे खड़े करने का मौका मिलेगा। चीन के प्रधान मंत्री का जो उत्तर प्राप्त हुआ है, उससे इस बात की पुष्टि होती है।

हमारे प्रधान मंत्री ने चीन के सम्मान को बनाए रखने के लिए यह सुझाव रखा था कि चीन भारतीय भूमि को छोड़कर चला जाए, मगर उन्होंने इसका यह उत्तर दिया है कि यह प्रस्ताव केवल लद्दाख की सीमा तक लागू क्यों होना चाहिए, अगर हम भारत के नक्शों में बताई हुई भूमि से बाहर जाते हैं तो हमारे नक्शों में बताई हुई भूमि से भारतीयों को भी, नेफा के क्षेत्र से बाहर जाना चाहिए।

इस तरह चीन के सम्मान को बनाए रखने का जो प्रयत्न किया गया, उसका परिणाम हमें अपने अपमान में दिखाई दे रहा है। प्रधान मंत्री जी की सद्भावना को समझने के बजाय चीन ने अपने दावे को और भी बढ़ाया है, उत्तर प्रदेश में, पंजाब में, हिमाचल में, और जो स्थान हमारे हैं, भूगोल से, इतिहास से, परंपरा से, संधि से, उन स्थानों पर चीन अपने दावे कर रहा है। लद्दाख में हटने की कीमत माँग रहा है। दूसरे क्षेत्रों पर से हम अपने अधिकार को छोड़ दें, इस प्रकार की बात कह रहा है। मेरा संकेत इतना ही है कि जब चीन की मनोवृत्ति यह है तो फिर चीन के साथ समझौता सफल होगा, इस आशा का आधार क्या है? समझौता होना चाहिए, देश में कोई युद्ध नहीं चाहता है किंतु अगर भारत के हितों की बलि चढ़ाई जाती है, अगर हम चीन के साथ सौदा करते हैं, अगर भारत के सम्मान की हम रक्षा नहीं कर सकते तो वह शांति प्राप्त करने लायक शांति नहीं होगी, वह स्थायी शान्ति नहीं होगी।

चीन के प्रधान मंत्री ने एक महीने बाद उत्तर दिया। वह चाहते हैं कि यह चिट्ठी-पत्री लम्बी चलती रहे जिससे जिस भूमि पर उन्होंने अधिकार किया है, उस पर वह सड़कें और हवाई अड्डे बना लें, अपने आक्रमण को पुष्ट कर लें।

श्री करम सिंह ने अपने वक्तव्य में यह भी बताया है कि जहाँ पर उनको गिरफ्तार किया गया, वहाँ पर मौटेरेबल रोड बनाई गई हैं। भारत की भूमि में युद्ध की तैयारियां चल रही हैं, चीन को इसके लिए समय चाहिए। इसी लिये वह लम्बी चिट्ठी-पत्री कर रहा है। खुद तो उसने एक महीने में जवाब दिया है और हमारे प्रधान मंत्री से यह आशा करता है कि उनको चिट्ठी मिलते ही बोरिया-बिस्तर बांध कर रंगून चले आना चाहिए। मैं नहीं समझता कि चीन के प्रधान मंत्री यह आशा कैसे कर सकते हैं? मुझे सन्तोष है कि हमारे प्रधान मंत्री ने रंगून जाने का प्रस्ताव ठुकरा दिया है। वह रंगून जाने का प्रस्ताव नहीं था, वह तो म्यूनिख का बुलावा था, चीन के प्रधान मंत्री रंगून में म्यूनिख का नाटक करना चाहते हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि हमारे प्रधान मंत्री ने रंगून जाने का प्रस्ताव ठुकरा दिया है। लेकिन उन्होंने राज्य सभा में आज दोपहर कहा कि चीन के प्रधान मंत्री के पत्र में मुझ से मिलने की उत्सुकता प्रकट की गई है। मैं उसका बड़ा स्वागत करता हूँ। मेरा यह निवेदन है कि क्या सचमुच में चीन के प्रधान मंत्री समझौता चाहते हैं या हमारे प्रधान मंत्री से मिलने की बात उन्होंने प्रचार के रूप में कही है, एक प्रापेगंडा स्टंट के रूप में कही है और दुनियां को यह दिखाना चाहते हैं कि चीन शांति चाहता है, जबकि चीन ने भारत पर आक्रमण किया है और भारत शांति नहीं चाहता है, क्योंकि हम मिलने के लिए तैयार नहीं हैं।

चीन के प्रधान मंत्री ने जो सुझाव रखे हैं उनमें और हिन्दुस्तान की कम्युनिष्ट पार्टी जिस लाइन को अपना रही है उसमें एक बड़ा साम्य है। इन्होंने भी कलकत्ता में यही नारे लगाये हैं कि दोनों प्रधान मंत्रियों को मिलना चाहिए और चीन के प्रधान मंत्री भी कहते हैं कि हमें मिलना चाहिए। मिल के क्या करना चाहिए? आखिर दोनों देशों के बीच की मिलन भूमि क्या है, समझौता-वार्ता का आधार क्या है? दोनों प्रधान मंत्री मिलें और मिलें तो रंगून में क्यों मिले और चीन में क्यों मिले? मिलें तो दिल्ली में क्यों न मिलें।

मुझे आपत्ति है चीन के प्रधान मंत्री के इस आरोप पर कि भारत में चीन की मित्रता के विरुद्ध वातावरण उत्पन्न किया जा रहा है। भारत में मित्रता के विरुद्ध वातावरण नहीं है, भारत में आक्रमण के विरुद्ध वातावरण है। जब तक यह आक्रमण कायम रहेगा तब तक यह वातावरण रहेगा। हम एक जीवित जाति हैं, हम अपनी स्वतंत्रता की कीमत जानते हैं, हम स्वाभिमान रखते हैं, अगर हमारी भूमि का अतिक्रमण होगा तो हमारी प्रति क्रिया आवश्यक है, उसको कोई रोक नहीं सकता। लेकिन चीन के प्रधान मंत्री प्रचार करना चाहते हैं, शांति के देवदूत बनना चाहते हैं,

हमारे प्रधान मंत्री को गलत स्थिति (पोजीशन) में डालना चाहते हैं। अब कम्युनिष्टों की ओर से कहा जायेगा कि चारु एन लाई सहाब तो मिलना चाहते हैं मगर पंडित जी नहीं मिलना चाहते। अगर पंडित जी मिलना नहीं चाहते तो ठीक है नहीं मिलना चाहते। आखिर मिलने का आधार क्या है? जब तथ्यों के बारे में समझौता नहीं है, जब सिद्धान्तों के बारे में एक मत नहीं है तो हम मिल कर क्या करेंगे? और अगर मिलन हो गया और बाद में असफलता हुई तो उसका परिणाम और भी भयंकर होगा। इसी लिए सरकार का यह दृष्टिकोण सही है। दोनों देशों के प्रधान मंत्रियों के मिलने से पहले जो प्रारम्भिक बातें हैं, उनका निश्चय हो जाना चाहिए, समझौते का आधार क्या होगा, इसको तय किया जाना चाहिए। लेकिन जहाँ तक प्रारम्भिक बातों का सवाल है, चीनी समझौता चाहते हैं, इसका उनके पत्र में तो कोई संकेत नहीं मिलता, सिवा इसके कि उन्होंने पंचशील की दुहाई दी है, शांति का राग अलापा है।

हम एक पिछड़े हुए देश हैं, हमें आर्थिक निर्माण करना है, उन्होंने इसकी चर्चा की है, मगर जो भारत की भूमि उनके कब्जे में है, उसको वह छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। हमारे प्रधान मंत्री कह चुके हैं कि भारत की उत्तरी सीमा तय है। भले ही वह नक्शे पर खींची न गई हो और हम छोटे-मोटे सीमा सम्बन्धी विवादों के बारे में बात कर सकते हैं, मगर भारत की पूरी सीमा विवाद का विषय नहीं बनाई जा सकती। मगर चीनी प्रधान मंत्री यह प्रयत्न कर रहे हैं कि सारी सीमा को विवाद का विषय बना दिया जाए। वह हमारी सीमा के निर्माता के रूप में छाती पर बैठना चाहते हैं। स्पष्ट है कि भारत सरकार और भारत की जनता इस स्थिति को बर्दाश्त नहीं कर सकती।

लेकिन आज कहा जाता है: हम क्या करें। प्रधान मंत्री जी ने राज्य सभा में कहा कि क्या किया जाए। क्या हम लड़ाई करें? कोई नहीं चाहता कि आप लड़ाई करें। लेकिन मैं पूछता हूँ कि अगर कल चीन ने लॉंगजू में या लद्दाख में आगे बढ़ना शुरू कर दिया तो आप क्या करेंगे?

आक्रमण के ऊपर समझौता नहीं हो सकता है, इसी लिए लड़ाई के लिए तो हमें तैयार ही रहना चाहिए। हम अपनी तरफ से लड़ाई शुरू न करें, पर अगर दूसरा पक्ष लड़ाई पर उतारू होता है तो लड़ाई को टाला नहीं जा सकता। लेकिन लड़ाई को छोड़कर और भी रास्ते हैं। हमारा तिब्बत के साथ जो व्यापार था वह खत्म होता जा रहा है। चीन ने तिब्बत के भारतीय व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाया है। फिर भी हमने नहीं लगाया। हमने केवल कलमपोंग की चीनी व्यापार एजेन्सी के सामने पहरा

बिठाया है। अभी भारत में चीनी व्यापार एजेन्सियाँ हैं जिनकी गतिविधियों पर रोक लगाई जा सकती थी। पीकिंग स्थित भारतीय दूतावास पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं वह अभी नई दिल्ली के चीनी दूतावास पर नहीं लगाये गये। यह कदम उठाने का समय आ गया है।

आज चीनी आक्रमण के कारण हमारे सामने एक संकट है, चीन के मित्र 'भारत में लोकतंत्र है' यह नारा लगाकर उस संकट से हमारी आँखें बन्द नहीं कर सकते। मगर हम चाहें तो चीन के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों को तोड़ भी सकते हैं। बिना लड़ाई को छेड़े हुए और भी रास्ते अपनाये जा सकते हैं, और जहाँ चाह है वहाँ राह भी मिल जाती है। कम्युनिष्ट पार्टी को छोड़ कर, मैं समझता हूँ कि सारा देश इस बात पर सहमत है, कि चीनी चुनौती का दृढ़ता के साथ सामना किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट है कि लड़ाई लड़नी होगी, लेकिन जब तक हम समय पर कदम नहीं उठायेंगे तब तक सारे देश में एकता कायम कर उस चुनौती का सामना करने का वातावरण तैयार नहीं किया जा सकता।

(लोकसभा, 22 सितंबर 1959)

6. भारत की भावना

आज समाचार पत्रों में यह खबर निकली है कि मिसामारी कैम्प से जो तिब्बती शरणार्थी धर्मशाला भेजे जा रहे थे उनमें से 3 गाड़ी में मर गये और इस खबर के अनुसार 30 तिब्बती शरणार्थियों का पता नहीं है, शायद वे रास्ते में कहीं गायब हो गये होंगे। खबर में यह भी लिखा है कि सरकार ने उनके डाक्टरी इलाज का कोई इन्तजाम नहीं किया। उनके साथ रास्ते में कोई दुभाषिये नहीं थे, जो उनकी कठिनाइयों को समझते और उनके निराकरण का प्रयत्न कर सकते।

जब निर्वासितों को धर्मशाला में बसाने का फैसला किया गया है और शासन उसके लिए हम से धनराशि की माँग भी कर रहा है, तो मैं समझता हूँ कि बीच में उनको ले जाने का ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए था जिसमें किसी को कोई शिकायत का मौका नहीं मिलता।

तिब्बती शरणार्थी दुर्भाग्य के मारे हमारे देश में आये हैं। मैं समझता हूँ कि उनके बसाने मात्र से हम अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझ सकते। इस विवाद में दिल्ली में होने वाले तिब्बती कन्वेंशन की बहुत चर्चा होती है। मुझे यह देखकर दुख होता है कि हमारी सरकार ने विशेष कर हमारे प्रधान मंत्री ने उस प्रचार के सम्बन्ध में अपनी नाराजगी जाहिर की है। यह बात सही है कि वह प्रचार के सम्बन्ध में अपनी नाराजगी जाहिर की है। यह बात सही है कि वह प्रचार जनता की ओर से हो रहा है। भले ही सरकार तिब्बत के प्रति अपने कर्तव्य को न समझे, मगर देश की जनता समझती है कि तिब्बत के प्रति हमारा नैतिक कर्तव्य क्या है। विदेशी गुलामी से निकला हुआ भारत उन देशों के प्रति अपनी सहानुभूति के प्रकटीकरण से नहीं रूक सकता जो नये-नये गुलामी के फंदे में जकड़े जा रहे हैं। प्रधान मंत्री जी शायद भूल गये हैं, मैं उन्हें स्मरण दिला दूँ कि 7 दिसम्बर 1950 को उन्होंने इसी सदन में खड़े होकर कहा था। मैं उनके शब्दों को उद्धृत कर रहा हूँ:

“अपनी प्रत्यक्ष सीमा से बाहर किसी अन्य क्षेत्र पर अपनी संप्रभुता और आधिपत्य की बातें करना किसी देश के लिए ठीक नहीं है...। यह बात कहना सही और उपयुक्त होगा और मैं इसे चीनी सरकार से कहने में कोई मुश्किल नहीं देखता कि तिब्बत पर आपकी संप्रभुता या तिब्बत पर आपका आधिपत्य है या नहीं, लेकिन सिद्धान्तों के अनुसार, सिद्धान्त जिन्हें आप और मैं उद्धोषित करते हैं, तिब्बत के बारे में अंतिम आवाज तिब्बत की जनता की होगी और किसी की नहीं”।

यह शब्द भुलाये नहीं जा सकते, मगर इन शब्दों के अनुसार अगर हम भारत सरकार के तिब्बत के सम्बन्ध में आज के आचरण को देखें तो बड़ी विसंगति दिखाई देती है। हमारे प्रधान मंत्री जीवनभर साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। हो सकता है कि आज प्रधान मंत्री के आसन पर बैठ कर उनके सामने कुछ ऐसी कठिनाइयाँ आती हों कि वह अपने हृदय के भावों को ठीक तरीके से प्रकट न कर सकते हों। लेकिन मैं नहीं समझता कि अगर कहीं मानवता पर कुठाराघात होता है, मानव-अधिकारों का उल्लंघन होता है, जिस प्रकार कि तिब्बत में तिब्बत के व्यक्तित्व को समाप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है, तो उनके दिन में तिलमिलाहट नहीं होगी।

अगर वे बोल नहीं सकते, तिब्बत की जनता की माँगों का समर्थन नहीं कर सकते, तो मैं समझता हूँ कि अगर भारत की जनता एक सम्मेलन का आयोजन करे और एशियाई-अफ्रीकी देशों की सहानुभूति तिब्बत के सम्बन्ध में प्रकट करना चाहे, तो उन्हें कम से कम उसके सम्बन्ध में अपनी नाराजगी तो नहीं प्रकट करनी चाहिए। कम्युनिष्ट पार्टी की नीति हम समझ सकते हैं क्योंकि जो कम्युनिष्ट पार्टी आत्म निर्णय के अधिकार का नारा लगाती है और जिस नारे के आधार पर उन्होंने पाकिस्तान की साम्प्रदायिक माँग का समर्थन किया, वही कम्युनिष्ट पार्टी आत्म-निर्णय के अधिकार के सिद्धान्त को तिब्बत पर लागू करने के लिए तैयार नहीं है। कामरेड खुश्चेव आत्म-निर्णय के अधिकार को पखूनिस्तार के ऊपर लागू कर सकते हैं मगर तिब्बत के बारे में यहाँ की कम्युनिष्ट पार्टी नहीं बोलेगी। वे न बोलें लेकिन वे हमें भी बोलने नहीं देना चाहते और हमारे प्रधान मंत्री जी की इसीलिए प्रशंसा करते हैं कि परिस्थिति की कठिनाइयों के कारण वे तिब्बत की जनता के प्रति अपना समर्थन खुले रूप से प्रकट नहीं कर सकते।

अब जहाँ तक भावना का सवाल है, मैं कभी यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि हमारे प्रधान मंत्री जी की भावनाएं तिब्बत की जनता के साथ नहीं हैं। चीन ने तिब्बत को आश्वासन दिया है कि वह तिब्बत की स्वायत्तता का समादर करेगा और इसी आश्वासन के आधार पर तिब्बत ने अपनी प्रभुसत्ता का थोड़ा-सा हिस्सा चीन को सौंप दिया, लेकिन जब चीन ने इस समझौते का उल्लंघन कर दिया तो फिर तिब्बत ने अपनी प्रभुसत्ता का हिस्सा चीन को सौंपा था वह उसको वापस मिल जाता है और इसी लिए यह कहना कि तिब्बत अपनी स्वायत्तता की माँग नहीं कर सकता, मैं समझता हूँ कि कानूनी दृष्टि से भी ठीक नहीं है।

अगर ऐसी कठिनाइयाँ हैं सरकार के मार्ग में कि वह कुछ नहीं कर सकती तो भारतीय जनता जो सहानुभूति प्रकट करना चाहती है उसके सम्बन्ध में तो ऐसे शब्दों का प्रकटीकरण नहीं होना चाहिए जो जनता की भावनाओं को ठेस पहुंचाते हों।

मैं समझता हूँ कि तिब्बत की स्वायत्तता के साथ भारत की सुरक्षा जुड़ी हुई है। अगर हम अल्जीरिया की स्वतंत्रता का समर्थन कर सकते हैं और कम्युनिष्ट पार्टी उसमें आगे बढ़ कर हिस्सा ले सकती है तो फिर तिब्बत की स्वायत्तता के सम्बन्ध में किसी प्रकार की माँग के विरोध में आवाज नहीं उठानी चाहिए। लेकिन चीन दावा करता है कि तिब्बत चीन का अंग है। जैसे कि पुर्तगाल दावा करता है कि गोवा पुर्तगाल का अंग है। हम पुर्तगाल के इस दावे को नहीं मान सकते और चीन का यह दावा भी नहीं माना जा सकता। चीन ने तिब्बत को संसार के मानचित्र से उड़ा दिया। मुझे यह देखकर बहुत दुःख हुआ कि भारत सरकार ने भी जो नये नक्शे छापे हैं उनमें तिब्बत नहीं है। तिब्बत नक्शे से मिट गया। तिब्बत का नाम उन नक्शों में नहीं है। वहाँ केवल चीन लिखा हुआ है। चीन ने तिब्बत को मिटा दिया तो क्या हमारे लिए भी तिब्बत मिट गया? मैं नहीं समझता कि इस नीति का कोई अच्छा परिणाम होने वाला है। नैतिक दृष्टि से तो यह नीति भारत के लिए उपयुक्त है ही नहीं लेकिन अगर हम संकुचित राष्ट्रीय स्वार्थों की दृष्टि से भी विचार करें तो भी तिब्बत का इस तरह मिट जाना, दूरगामी दृष्टि से भारत के हित में नहीं हो सकता।

(लोकसभा, 17 मार्च 1960)

7. लद्दाख में घुसपैठ

रक्षा मंत्रालय का कार्य देश की रक्षा करना है और जहां तक विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा करने के प्राथमिक कर्तव्य का सवाल है, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि रक्षा मंत्रालय अपने कर्तव्य को पूरा करने में सफल नहीं हुआ है। भारत की सीमायें हमारे पड़ोसियों के लिये सहज आक्रमण का विषय बन गईं। 42,000 वर्ग मील भूमि हमारे जम्मू एवं कश्मीर की पाकिस्तान के कब्जे में है। यह कहा जा सकता है कि जब पाकिस्तान ने जम्मू एवं कश्मीर पर आक्रमण किया तब हम तैयार नहीं थे, लेकिन यह तर्क चीन ने जो आक्रमण हमारे ऊपर किया है, उसके सम्बन्ध में लागू नहीं होता। लद्दाख जम्मू एवं कश्मीर का हिस्सा है। जम्मू एवं कश्मीर में युद्ध की स्थिति है। जम्मू एवं कश्मीर के आवागमन का नियंत्रण रक्षा मंत्रालय के हाथ में है। इससे जो बहुत से लोग जम्मू एवं कश्मीर जाते थे, उन्हें रक्षा मंत्रालय से परमिट प्राप्त करना होता था। कभी-कभी वह परमिट दिये जाने से रोक भी दिया जाता था। इसका मतलब यह है कि जम्मू एवं कश्मीर की सीमा और उसकी रक्षा का भार पूरी तरह से रक्षा मंत्रालय पर था। लेकिन चीनी आक्रमणकारी लद्दाख में होकर घुस आये और रक्षा मंत्रालय को उनका पता भी नहीं लगा। हम गये थे जम्मू एवं कश्मीर की रक्षा करने पाकिस्तान से, मगर वह चीनी आक्रमण का विषय बन गया और इसके लिये रक्षा मंत्रालय जिम्मेदार है। क्यों नहीं हमने लद्दाख की सीमा की पूरी व्यवस्था की?

यह कहा जा सकता है कि हमें चीन से आक्रमण की आशंका नहीं थी। लेकिन पाकिस्तान के आक्रमण को देखते हुए हमें लद्दाख की रक्षा का पूरा इन्तजाम करना चाहिये था। यह सीमा की ही बात नहीं है। चीनी आक्रमणकारी 40-45 मील भारत की भूमि में अन्दर घुस आया।

लेकिन हमारे रक्षा मंत्रालय को पता नहीं लगा। मैं समझता हूं कि रक्षा मंत्रालय की सफलता का माप रक्षा मंत्रालय द्वारा निर्मित की जाने वाली वस्तुओं से नहीं लगाया जा सकता। उत्पादन में वृद्धि हो, यह बड़े आनन्द की बात है। लेकिन इस मंत्रालय का पहला कार्य देश की रक्षा करना है। मैं जानना चाहता हूं कि जब चीनियों में लॉंगजू पर आक्रमण कर दिया था और हमारे प्रधान मंत्री जी ने कहा था कि "इट इज ए क्लियर केस आफ एग्रेसन" तो उसके बाद कर्म सिंह और उनके साथियों को चीनी सेना की गोलियों का शिकार बनने के लिए लद्दाख में क्यों भेज दिया गया? सरकार जानती थी और सन् 1957 में पता लग गया था कि चीन ने लद्दाख में

घुसकर सड़क बनाई है तो फिर कर्म सिंह की पार्टी को कोई संरक्षण क्यों नहीं दिया गया? उनके पास हथियार नहीं थे और वे जमीन के नीचे खड़े हुए थे और चीनी सेनायें ऊपर पहाड़ की चोटियों पर बैठी हुई थीं। मैं पूछना चाहता हूँ कि रक्षा मंत्रालय ने कर्म सिंह और उनकी पार्टी के साथ रक्षा का इंतजाम क्यों नहीं किया जिससे कि चीनी आक्रमण से वह बच सकते थे?

अब कहा जाता है कि यह राज्य का विषय है, लेकिन मैं समझता हूँ कि लद्दाख के बारे में यह बात लागू नहीं होती क्योंकि जब से पाकिस्तान ने लद्दाख पर आक्रमण किया है, लद्दाख की रक्षा का भार केन्द्रीय सरकार के जिम्मे है। पहले तो चीनी आक्रमण का पता नहीं लग सका और उन्हें 40-45 मील भारत की सीमा के अन्दर आने से नहीं रोक सके और सबसे बड़ी गलती यह की गई है कि कर्म सिंह और उनके साथियों को चीनी सेना द्वारा मारने के लिये छोड़ दिया गया। रक्षा मंत्रालय को इस स्थिति को स्पष्ट करना चाहिये।

मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि क्या यह बात सच है कि जनरल थिमैया ने सन् 1957 में इस बात की ओर संकेत किया था कि चीनी सेनायें लद्दाख में घुस आयी हैं। यह कहने के लिए मेरे पास आधार भी है कि 14 दिसम्बर 1959 के अमेरिकी अखबार टाइम ने जनरल थिमैया और वित्त मंत्री श्री मोरारजी देसाई के बीच हुई बातचीत को उद्धृत किया और रक्षा मंत्री ने जैसे ही उस दिन न्यूयार्क पोस्ट के संवाददाता को दी गई भेंट से इंकार कर दिया था। अभी परमात्मा का शुक्र है कि वित्त मंत्री महोदय ने उस भेंट से इंकार नहीं किया है और मैं यह भी नहीं मानता हूँ कि उन्होंने इसको पढ़ा नहीं होगा।

मैं इसका एक अंश सभापति महोदय, आपके सामने रखना चाहता हूँ:

“वित्त मंत्री श्री मोरारजी देसाई गुस्से में मामले के तथ्यों को पाने के लिए निकल पड़े।”

यह कथन लद्दाख के बारे में है।

“भारतीय सेनाध्यक्ष जनरल के.एस. थिमैया से सवाल-जवाब के दौरान उसने पूछा कि सर्वप्रथम उन्हें सड़क की जानकारी कब हुई।”

“1957 में” जनरल ने कहा और उन्होंने भारत की सुरक्षा की रक्षा के लिए प्रस्ताव पेश किए। लेकिन उन्हें रक्षा मंत्री श्री मेनन द्वारा रद्द कर दिया गया।”

“क्यों?” यह इनवर्टेड कौमाज में लिखा हुआ है। श्री मोरारजी देसाई ने पूछा है कि ऐसा क्यों?

“क्यों?” श्री देसाई ने पूछा। ‘क्यों कि’, थिमैया ने जवाब दिया, “उन्होंने कहा कि दुश्मन इस तरफ नहीं, दूसरी तरफ है।”

इसका अर्थ यह है कि सुरक्षा मंत्रालय ने हमारे जनरल थिमैया से कहा है कि दुश्मन दूसरी तरफ है अर्थात् दुश्मन चीन की तरफ नहीं है बल्कि दुश्मन पाकिस्तान की तरफ है। मैं चाहता हूँ कि रक्षा मंत्री इसका खंडन करें, यदि यह सही न हो। लेकिन अगर यह बात सच है तो रक्षा मंत्री चीनी आक्रमण के सामने देश को खुला छोड़ कर रख देने के दोषी हैं। पाकिस्तान से आक्रमण की सम्भावना है। पाकिस्तान ने आक्रमण किया है। इससे इंकार नहीं किया जा सकता, मगर हमारे रक्षा मंत्री एक तरफ से आंखें बन्द कर लें और केवल अपना ध्यान पाकिस्तान की तरफ लगायें रहें तो देश की सुरक्षा के साथ वह न्याय नहीं कर सकते। अभी भी चीनी आक्रमण हो जाने के बाद ऐसा लगता है कि हम चीनी आक्रमण की गम्भीरता को नहीं समझे हैं।

अभी उस दिन जब अन्तरिक्ष के ‘उल्लंघन’ की चर्चा चली थी और प्रश्न पूछा गया तो जहाँ तक पाकिस्तान द्वारा हमारे अन्तरिक्ष के उल्लंघन का सवाल है। रक्षा मंत्री ने बड़े विश्वास के साथ जवाब दिया, मगर चीन की तरफ से आने वाले हवाई जहाजों के बारे में वह कुछ नहीं बोले। बाद में राज्य सभा में उन्होंने कहा कि जिन लोगों ने देखा है, सुना है वे ऐसा कहते हैं कि हवाई जहाज चीन की तरफ से आये थे। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या हमारी सेनाएं चीन की तरफ से आने वाले हवाई जहाजों की आवाज सुन नहीं सकतीं या देख नहीं सकतीं और क्या हम उनको पहचान नहीं सकते या पहचान लेते हैं तो फिर हमारे रक्षा मंत्री महोदय यहां सदन में आकर उस बात को कहने में झिझकते क्यों हैं? आखिर इसका कारण क्या है? अब अगर हवाई जहाज हम पहचान नहीं सकते तो यह रक्षा मंत्री और रक्षा मंत्रालय की प्रशंसा के जो पुल बाँधे गये हैं, यह कोई मतलब नहीं रखते। देश की स्वाधीनता प्राप्त किये हुए 13 वर्ष हो गये और इस सदन ने कभी भी रक्षा मंत्री जो उन्होंने माँग की उसको उन्हें दिया है। गत वर्ष भी यह कहा गया था और सदन में किसी ने इस बात पर आपत्ति नहीं की कि रक्षा के ऊपर अधिक धन खर्च किया जाना चाहिए। लेकिन उस दिन हमारे माननीय सदस्य श्री त्यागी ने रक्षा मंत्री महोदय से यह आश्वासन चाहा था कि भविष्य में चीनी हवाई जहाज भारत की सीमा का उल्लंघन करके नहीं आ सकेंगे, यह आश्वासन क्या आप दे सकते हैं तो उन्होंने कहा था कि ‘रिसोर्सेस परमिटिंग।’

इस रिपोर्ट में भी कहा गया है कि कनसिस्टेंट विद अवर लिमिटेड रिसोर्सेज, मैं जानना चाहता हूँ कि यदि हमारे देश की सीमा में विदेशी हवाई जहाज घुस आते हैं तो वह किस देश के हवाई जहाज हैं, क्या इसका पता लगाने के लिये भी हमारे पास साधन नहीं हैं? अगर रक्षा मंत्रालय के पास साधन नहीं हैं तो वे इस सदन में आकर अधिक धन की माँग कर सकते हैं। जब भी उन्होंने कोई माँग की हमने उसको स्वीकार किया और कभी भी रुपया देने से हमने इंकार नहीं किया। देश की सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिये। ऐसा लगता है कि उत्तरी सीमाओं की उपेक्षा की गई है और आज भी उपेक्षा की जा रही है। चीनी आक्रमण हो जाने के बाद भी रक्षा मंत्रालय को अपने कर्तव्य का जिस तरह से पालन करना चाहिये था, वह नहीं कर रहा है और मैं समझता हूँ कि वह देश के लिये बड़ी गम्भीर बात है। हमारी सीमाएं दोनों ओर से अतिक्रमण का विषय बन गई हैं।

एक भूतपूर्व रिटायर्ड मेजर जनरल शिवदत्त सिंह आर्मी में रह चुके हैं और मैं समझता हूँ कि जो वह बातें कहते हैं तो वह अनुभव के आधार पर ही कहते होंगे। इसी लिये मैं उनका उल्लेख करता हूँ। उनका कहना है कि ऐसा हो सकता है कि चीन और पाकिस्तान कभी एक साथ मिलकर हमारी सीमाओं पर हमला करें।

(लोकसभा, 9 अप्रैल 1960)

8. कम्युनिष्ट का प्रचार

कम्युनिष्ट पार्टी के डिप्टी लीडर, प्रोफेसर हीरेन मुखर्जी ने अपने भाषण में हमारे प्रधान मंत्री जी को एक चुनौती दी है। मुझे विश्वास है कि उसका उत्तर दिया जायेगा। केन्द्र सरकार के पास राज्यों की सरकारों से और पहाड़ी जिलों से जरूर ऐसी खबरे आई होंगी, जिनसे यह साबित किया जा सके कि कम्युनिष्ट पार्टी उन जिलों में चीन के आक्रमण के सवाल पर गलत ढंग का प्रचार कर रही है। मैं अपने कम्युनिष्ट दोस्तों का ध्यान इस सप्ताह के बम्बई के ब्लिट्ज की ओर दिलाना चाहता हूँ। ब्लिट्ज पर कोई यह आरोप नहीं लगा सकता कि वह कम्युनिष्ट विरोधी है। अगर उस पर कोई आरोप लगाता है तो वह यही है कि वह कम्युनिष्टों की तरफ काफी झुका हुआ है लेकिन इस सप्ताह के ब्लिट्ज ने लिखा है :

“ऊपरी गढ़वाल में दो गाँव हैं, चान्यी और थान्यी। कम्युनिष्ट पूरे इलाके में जनता को यह बताते घूमे कि यह क्षेत्र चीन का है क्योंकि गाँवों के नाम चीनी लगते हैं। उत्तर प्रदेश के अन्य पर्वतीय जिलों में स्थानीय कम्युनिष्ट भारत सरकार पर चीनी हमले का हौवा खड़ा करने का आरोप लगा रहे हैं ताकि अन्य जरूरी समस्याओं जैसे बेरोजगारी और बढ़ती कीमतेँ आदि से जनता का ध्यान हटाया जा सके।”

मेरा निवेदन है कि अगर यह खबर गलत है तो कम्युनिष्ट पार्टी के हमारे माननीय सदस्यों को इस अखबार पर मुकदमा चलाना चाहिए और उसे माफ़ी माँगने पर मजबूर करना चाहिए। लेकिन इस तरह की खबरें और भी मिली हैं। मैं पिछले वर्ष जब अल्मोड़ा गया था, तो वहाँ के लोगों ने मुझे बताया कि कम्युनिष्ट पार्टी से सम्बन्धित एक सांस्कृतिक संगठन है जो सीमावर्ती क्षेत्रों में नाटक या अभिनय के द्वारा लोगों को आकृष्ट करता है और उस मण्डली ने वहाँ एक ऐसा नाटक किया जिसमें चीनी सेना को लिबरेशन आर्मी के रूप में भारत में आते हुए दिखाया गया था। मैं चाहूँगा कि कम्युनिष्ट पार्टी के प्रवक्ता इन आरोपों का ठीक तरह से उत्तर दें। सवाल यहाँ सिर्फ न्यू एज का नहीं है, जिसका उल्लेख प्रधान मंत्री जी ने किया है। लखनऊ से न्यू एज का एक हिंदी संस्करण निकलता है, जिसका नाम जन युग है। उस पत्र ने उत्तर प्रदेश सरकार के एक विज्ञापन को छपा था। उत्तर प्रदेश के सभी हिन्दी अखबारों में एक विज्ञापन दिया। मैं उस विज्ञापन को आपको पढ़कर सुनाता हूँ:

“उत्तर प्रदेश के निवासियों पर देश की उत्तरी सीमा की रक्षा का भार विशेष रूप से है। चीन की आक्रामक कार्यवाहियों का सामना हम पारस्परिक सहयोग और

संगठित प्रभाव से ही कर सकते हैं। प्रदेश की सरकार पूरे राज्य और विशेषतः सीमावर्ती क्षेत्रों के विकास के लिये अनेक योजनायें चला रही है। इन योजनाओं को सफल बनाकर आप स्वदेश प्रेम का परिचय देंगे और राष्ट्र की शक्ति बढ़ाने में सहायक बनेंगे।”

यह विज्ञापन सभी हिन्दी पत्रों में छपा और जो कम्युनिष्ट पार्टी का हिन्दी का जन युग है, उसने भी इस विज्ञापन को छापा। कई दिन के बाद जन युग के सम्पादक ने अपने अखबार में एक माफीनामा छपा। माफीनामा इस प्रकार है कि हमने जो यह विज्ञापन छापा है वह बड़ी गलती की, हमने बड़ा पाप किया और हमें चीन को आक्रामक नहीं कहना चाहिए और हमने अपने लोगों की भावनाओं को दुःख पहुँचाया है, हम ऐसा पाप फिर कभी नहीं करेंगे। हमको इस बार माफ किया जाये...

जो माफीनामा है उसको मैं आपके सामने पढ़ना चाहता हूँ।

“कई पाठकों ने क्षोभपूर्ण पत्रों द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार के चीन विरोधी आक्रमण की ओर ध्यान खींचा है। इन पत्रों के आने से पहले भी इस विज्ञापन के ‘मिथ्या और शरारतपूर्ण’ कथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया गया था।”

‘मिथ्या और शरारतपूर्ण’ शब्द इनवर्टिड कामाज में हैं।

“इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस प्रकार का कोई विज्ञापन किसी भी परिस्थिति में पत्र द्वारा प्रकाशित नहीं किया गया होता।”

प्रश्न यह है कि जब उत्तर प्रदेश सरकार के विज्ञापन में चीन के आक्रमण का नहीं केवल चीन की आक्रामक कार्यवाही का उल्लेख था और वह कम्युनिष्ट पार्टी का नीति सम्बन्धी वक्तव्य नहीं, केवल विज्ञापन था तो उसके लिये माफी माँगने की क्या जरूरत थी? क्या यह बात यह नहीं बतलाती है कि कम्युनिष्ट पार्टी इस विवाद में देश के साथ नहीं है, राष्ट्र के साथ नहीं है? चीन के बारे में उसके अन्दर मतभेद हो सकते हैं, मैं उनको समझ सकता हूँ। लेकिन एक बार जब इस संसद ने और केन्द्र सरकार ने निर्णय किया है कि चीन ने आक्रमण किया है तो मैं नहीं समझता हूँ कि देश में जो भी पार्टियाँ हैं या गुप हैं, उन्हें इस बात की छूट दी जा सकती है कि वे इसके ऊपर विवाद करें कि आक्रमण किया है या नहीं किया है। आक्रमण किया है या नहीं इसका फैसला सरकार करेगी और अगर एक बार यह फैसला हो गया कि आक्रमण किया है तो देश में रहने वाले प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह उसी के अनुसार चले। मगर कम्युनिष्ट पार्टी, मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है, इस

सवाल पर देश भक्ति का परिचय नहीं दे रही है और जब कभी हमारे प्रधान मंत्री को कभी-कभी जो खटकता है और जो सारे देश को खटकता है, उसका प्रकटीकरण करते हैं तो कम्युनिष्ट नेता चुनौती देते हैं। चुनौती देते हैं कि आप साबित करें।

मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है, अगर चीन ने आक्रमण नहीं किया है तो क्या चीनी फौजें हिन्दुस्तान में गुड विल मिशन पर आई हैं? क्या 12000 वर्ग मील भूमि भारत की भूमि नहीं है, जिस पर उन्होंने कब्जा कर लिया है? इस सवाल पर अगर भावनाओं की दृष्टि से देश में बैटवारा होता है, अगर जनता बाँटी जाती है तो यह देश अपनी स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सकता है। कम्युनिष्ट पार्टी को अपनी नीति बदलनी चाहिए। आर्थिक सवालों पर उनका कोई भी मत हो सकता है। मगर जब देश की स्वतंत्रता, देश की सुरक्षा का सवाल पैदा होगा, तो जो भारत के साथ खड़ा नहीं रहेगा, वह भारत में कैसे कार्य कर सकता है, इसका मुझे उत्तर चाहिए। मगर कम्युनिष्ट पार्टी अपनी गलती मानने के बजाय चुनौती देती है और चुनौती देती है आक्रामक को नहीं, बल्कि आक्रामक के पक्ष में चुनौती देती है।

सभी यह बात मानते हैं कि भारत की भूमि को चीन ने अपने कब्जे में कर लिया है और उस पर वह अपना आक्रमण मजबूत कर रहा है। सरकार ने इस बात को स्वीकार किया है कि उस अधिकृत प्रदेश में सड़कें बनाई जा रही हैं। तिब्बत में मिलिटरी बिल्डअप हो रहा है। ऐसी सूरत में अगर यह समस्या बातचीत से हल नहीं हुई तो क्या हम ऐसी स्थिति के लिये अपने को तैयार कर रहे हैं कि भारत की भूमि, जो चीन के जबरदस्ती कब्जे में है, उसको फिर से वापस ला सकें।

प्रधान मंत्री जी ने अपने भाषण में अल्जीरिया का उल्लेख किया है। स्वाभाविक है जब एशिया के नये-नये देश स्वाधीनता के प्रभात में प्रवेश कर रहे हैं और उनके जीवन के नये अध्याय का श्रीगणेश हो रहा है, हमारा ध्यान अल्जीरिया की तरफ जाएँ। लेकिन अल्जीरिया की तरफ हम अपना ध्यान ले जायें और हमारे पड़ोस में, तिब्बत में ही मानवाधिकारों का उल्लंघन होता रहे, तिब्बत में नरसंहार तथा दूसरी तरह के गम्भीर आरोप लगाये जाते रहें और हमारी सरकार तिब्बत के सम्बन्ध में चुप रहने की नीति अपनाये और जब संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रश्न उठता हो तो इस प्रश्न पर विचार किया जाए। यह तक कहने के लिए तैयार न हों, तो फिर साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के बारे में हमारी जो घोषणायें हैं, वे अपना कुछ अर्थ खो देती हैं। एक ओर तो पश्चिमी साम्राज्यवाद पीछे जा रहा है, गुलाम देश स्वाधीन हो रहे हैं और इधर हमारे पड़ोस में एक नया साम्राज्यवाद सिर उठा रहा है।

यह साम्राज्यवाद पहले साम्राज्यवाद से अधिक घातक है, क्योंकि यह स्वतंत्रता के आवरण में आता है। यह मनुष्य की मुक्ति का नारा लगाता है। यह पराधीनता के साथ एक आर्थिक दर्शन को ले कर चलता है। जहाँ हम पश्चिमी साम्राज्यवाद के विनाश के ऊपर प्रसन्न हैं और एशिया, अफ्रीका के नये स्वाधीन होने वाले देशों का स्वागत करते हैं वहाँ तिब्बत की ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। थाईलैंड और मलाया ने तिब्बत के सवाल को संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाने का फैसला किया है। होना तो यह चाहिए था कि भारत स्वयं उठाता, पर अगर हम स्वयं उठा नहीं सकते तो कम से कम हमें उनका समर्थन तो करना चाहिए।

जहाँ तक मानवाधिकारों का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं हो सकता और चीन भी बंधा हुआ है - मानवाधिकारों का पालन कराने के समझौते से। चीन ने बांडुंग सम्मेलन में भाग लिया था और बांडुंग सम्मेलन में जेनेवा कन्वेंशन को स्वीकार किया गया था कि हम प्रत्येक देश में मानव-अधिकारों का संरक्षण करेंगे और आज चीन में ही मानवाधिकारों को पैरों तले रौंदा जा रहा है। अगर उनका सवाल संयुक्त राष्ट्र में उठता है तो भारत सरकार को उसमें पूरा भाग लेना चाहिए और अपने नैतिक दायित्व को पूर्ण करना चाहिए। अब कहा जा सकता है कि अगर तिब्बत का सवाल वहाँ उठाया गया तो तिब्बतियों का फायदा नहीं होगा। मैं समझता हूँ कि तर्क करने की यह पद्धति गलत है। तिब्बतियों का फायदा किसमें होगा, इसका फैसला तिब्बत अच्छी प्रकार से कर सकता है। तिब्बत का फायदा किसमें होगा, यह फैसला हम करने लगे तो हममें और चीन में कोई फर्क नहीं रहेगा क्योंकि चीन भी यही कहता है कि तिब्बत का फायदा इसी में रहेगा कि वह चीन के पेट में बैठा रहे। आवश्यकता इस बात की है कि तिब्बत का फायदा किसमें होगा इसका फैसला तिब्बत वाले करें। अगर वे चाहते हैं कि उनका सवाल संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया जाए तो मैं समझता हूँ कि भारत सरकार को इस नैतिक दायित्व से बचना नहीं चाहिए।

(लोकसभा, 31 अगस्त 1960)

9. चीन और संयुक्त राष्ट्र संघ

हमारे प्रधान मंत्री जी ने यूनाइटेड नेशन्स की जनरल असेम्बली में जो भाषण दिया उसमें कम्युनिष्ट चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान देने की बात कही। इसमें मुझे कोई शिकायत नहीं है। चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में जगह मिलनी चाहिए, मिलेगी, देर हो सकती है।

उसके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वार स्वयं खुलने चाहिए, लेकिन मुझे शिकायत इस बात की है कि चीन के साथ हमारा जो संघर्ष है और चीन के आक्रमण से जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है, उसको उन्होंने विवाद कह कर टाल दिया। क्या चीन के आक्रमण के कारण जो स्थिति उत्पन्न हुई है, वह एक विवाद मात्र है? अगर चीन ने भारत की भूमि पर आक्रमण किया है, तो चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में जगह देने की बात कहते हुए भी प्रधान मंत्री जी को यह कहना चाहिए था कि यद्यपि चीन ने हमारे ऊपर आक्रमण किया है और भारत की 12000 वर्ग मील भूमि पर कब्जा कर लिया है, फिर भी हम चीन को जगह देने की बात इसी लिए कहना चाहते हैं क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ में सबको स्थान मिलना चाहिए। मैं समझता हूँ कि अगर वह चीन के आक्रमण का हवाला देते तो संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन को जगह देने की बात को और भी बल मिलता, क्योंकि आक्रमण के बावजूद हम कहते हैं कि चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान मिलना चाहिए। लेकिन शायद प्रधान मंत्री ने कड़े शब्दों का उपयोग करना ठीक नहीं समझा। उनके कड़े शब्द शायद लोक सभा में विरोधी दलों के लिए ही सुरक्षित रह गये हैं। मगर हम समझते हैं कि स्थिति का स्पष्ट निर्देश होना चाहिए था। हमको एक मौका था कि हम विश्व के जनमत को प्रभावित करते। हमारा चीन के साथ जो संघर्ष है, उसको हम दूसरे देशों के सामने रखते। जब तक हम बार-बार ऐसा नहीं करेंगे तब तक दूसरे देश चीन के साथ जो हमारा संघर्ष है, उसकी वस्तु स्थिति को नहीं समझ सकेंगे। वे समझते हैं कि कोई बड़ा झगड़ा नहीं है, इसी लिए तो भारत चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान देने की बात करता है। हमको एक मौका था कि हम इस प्रश्न पर विश्व के जनमत को शिक्षित करते और अपने पक्ष में करते।

दुःख की बात यह है कि हमने तिब्बत में मानवाधिकारों के उल्लंघन के संबंध में थाईलैंड और मलाया ने जो शिकायत रखी है, उसका समर्थन न करने का फैसला

किया है। भारत अगर तिब्बत के स्व निर्णय के अधिकार को न मानता तो एक बार समझ में आ सकता था क्योंकि भारत को यह बात अंग्रेजों से विरासत में मिली है कि तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता है। लेकिन जहाँ तक मानवाधिकारों के उल्लंघन का सवाल है, उसके बारे में तो भारत को चुप नहीं बैठे रहना चाहिए। अब यह कहना कि यह प्रश्न तो शीत युद्ध का प्रश्न है और हम नहीं चाहते हैं कि इस प्रश्न को उठाने का क्या अर्थ होगा, ये तर्क मेरी समझ में नहीं आते। यदि चीन वहाँ नहीं है तो हम क्या करें। लेकिन तिब्बत की जनता के प्रति जो भारत की भावना है, उसको व्यक्त करने का दायित्व तो हम पर है। अगर हम उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का अन्त करने की बात करते हैं, अगर हम अल्जीरिया में फ्रेंच साम्राज्यवाद के विरुद्ध हैं, तो हमारी सीमा से लगा हुआ, हिमालय की चोटियों पर जो एक नया साम्राज्यवाद उदय हो रहा है, उसकी ओर से हम अपनी आँखें नहीं मूंद सकते। मेरा निवेदन है कि भारत सरकार को इस संबंध में अपनी नीति पर पुनर्विचार करना चाहिए।

यह ठीक है कि अगर तिब्बत का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में उठेगा तो उसका कोई हल निकलने वाला नहीं है। मगर हमने वहाँ ऐसे अनेक सवाल उठाये हैं जिनका हल नहीं निकला पर ऐसा करने से हमें यह संतोष तो हुआ है कि हमने अपने कर्तव्य का पालन किया। जब हम साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध सारे संसार में अपनी आवाज बुलन्द करने का दावा करते हैं तो हम तिब्बत में हो रही घटनाओं के प्रति आँख बन्द करके नहीं बैठ सकते।

अध्यक्ष महोदय, मैंने यह भी अनुभव किया है कि हमारी विदेशों में प्रचार की जो प्रणाली है, उसमें बड़ी कमी है, बड़ी खामी है। उसे और अधिक सक्षम बनाने की आवश्यकता है। अमेरिका के अपने भ्रमण में मैंने देखा कि वहाँ कश्मीर के सवाल पर लोगों में बड़ा भ्रम है और भ्रम तथ्यों के बारे में है। मुझे अनेक नागरिक ऐसे मिले जो यह भी नहीं जानते हैं कि देश के बँटवारे के बाद अभी भी भारत में करोड़ों मुसलमान बन्धु रहते हैं जिन्हें बराबर के अधिकार प्राप्त हैं। वे समझते हैं कि देश का बँटवारा हो गया, पाकिस्तान अलग बन गया और सब मुसलमान वहाँ चले गये। चूँकि कश्मीर में भी मुसलमान ज्यादा हैं, इसी लिए कश्मीर भी पाकिस्तान में जाना चाहिए। जब मैंने उन्हें बताया कि भारत में अभी करोड़ों मुसलमान रहते हैं और कश्मीर के सवाल पर हम साम्प्रदायिक तर्क को मानने के लिए तैयार नहीं हैं तो वे प्रभावित हुए। लेकिन हमारे प्रधान मंत्री जी ने न्यूयार्क में एक साक्षात्कार में कह दिया कि जो कश्मीर का

हिस्सा पाकिस्तान के कब्जे में है, उसको हम लेने की कोशिश नहीं करेंगे। हम स्टेटस (यथा स्थिति) को मानते हैं, उससे छेड़छाड़ नहीं करेंगे।

मैं इस नीति से सहमत नहीं हूँ। अगर हम उस हिस्से पर अपने अधिकार को छोड़ देंगे जो आक्रमण से चला गया है, तो और स्थानों पर भी आक्रमण से चली गयी भूमि पर अपने अधिकार को छोड़ने की बात को बल मिलेगा। मैं नहीं समझता हूँ कि आज की स्थिति में यह नीति ठीक होगी।

(लोकसभा, 20 नवंबर 1960)

10. राष्ट्र पर संकट

कल राज्य सभा में प्रधान मंत्री जी ने जो यह घोषणा की है कि चीन के साथ समझौता केवल इसी आधार पर हो सकता है कि चीन भारत का क्षेत्र खाली कर दे, इसमें लेन-देन का कोई प्रश्न नहीं उठता, मैं उस घोषणा का स्वागत करता हूँ। हमारे प्रधान मंत्री जी ने फिलहाल पीकिंग न जाने के संबंध में जो निर्णय किया है, उसका भी मैं समर्थन करता हूँ। जब तक चीन के रवैये में, चीन के दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं होता, चीन के साथ वार्ता करने का कोई लाभ नहीं होगा। लेकिन इन घोषणाओं का स्वागत करते हुए भी मैं प्रधान मंत्री जी के भाषण में इस प्रश्न का कोई उत्तर न खोज सका कि अगर चीन भारत की भूमि पर से अपने आक्रमण को नहीं हटाता तो हम भारत की भूमि को मुक्त करने के लिए कौन-से कदम उठाने जा रहे हैं। यदि आज सैनिक कार्रवाई करना सम्भव नहीं है तो कम से कम यह तो संभव है कि सीमा पर जो चौकियाँ हैं, वहाँ पुलिस की जगह अपनी फौज तैनात करें। उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री ने विधान सभा में यह बताया है कि काला पानी तथा गरबियान के चैक पोस्ट पर अभी भी सिविल पुलिस लगी हुई है, वहाँ हमारी फौज के जवान तैनात नहीं किए गए हैं। उन्होंने यह भी बताया है कि ये चौकियाँ पूरे वर्ष कार्य नहीं करती, कुछ महीने ही कार्य करती हैं और बाद में पुलिस के सिपाही वापिस चले आते हैं। अगर चीन के जवान तकलाकोट में बारहों महीने चौकियों पर कार्य कर सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि हम भी वहाँ पुलिस की जगह फौज के जवान न रखें और बारहों महीने वहाँ पर सीमा की देख-भाल का इंतजाम न करें।

इस के साथ यह भी प्रश्न है कि क्या सैनिक कार्रवाही को छोड़ कर हम ऐसे और कोई कदम उठाने के लिए तैयार हैं जिन से पता लगे कि हम चीन के आक्रमण को बरदाश्त नहीं करेंगे। उस दिन उप-विदेश मंत्री ने राज्य सभा में बताया था कि पीकिंग में हमारा जो भारतीय मिशन है, उसके राजदूत के वैयक्तिक सहायक के साथ बड़ा अपमानजनक व्यवहार किया गया। हमने विरोध की एक चिट्ठी भेजी है। पर क्या केवल इतना ही पर्याप्त है? क्या हम उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब इस प्रकार का अपमानजनक व्यवहार हमारे राजदूत के साथ किया जायेगा? चीन का हमारे प्रति जो भी आचरण है, उसके विरोध-स्वरूप हमें पीकिंग से अपने राजदूत को वापिस बुला लेना चाहिये और जब तक हम उन्हें वापिस नहीं बुलाते, तब तक चीन में हमारे राजदूत और उन के कर्मचारियों पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, उसी प्रकार के प्रतिबन्ध नई दिल्ली स्थित चीनी राजदूतावास के कर्मचारियों पर भी लगाने चाहिये।

दोनों देशों के अधिकारियों ने जो वार्ता की है, उससे एक बात स्पष्ट हो गई है कि तिब्बत के सम्बन्ध में हमने जो नीति अपनाई है वह नीति ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट नहीं होती। चीन ने भी इस अधिकार की पुष्टि की है कि तिब्बत सन्धियाँ कर सकता है। हमने भी इसका उल्लेख किया है कि तिब्बत को अन्तरराष्ट्रीय सन्धियाँ करने का अधिकार था। तो फिर हम तिब्बत पर चीन के अधिकार को सौ फीसदी किस तरह से स्वीकार कर सकते हैं? जो तथ्य हमने रखे हैं, जो सन्धियाँ हमने उद्धृत की हैं, उनसे इस बात की पुष्टि होती है कि तिब्बत को एक स्वतन्त्र देश के रूप में जीवित रहने का अधिकार था। अगर आज सरकार किन्हीं कारणों से इतना आगे बढ़ने को तैयार नहीं है तो कम से कम तिब्बत में मानव अधिकारों के उल्लंघन का जो प्रश्न है जिसे थाईलैंड और मलाया ने संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया है, हमें उनके समर्थन में तो उन्हें आश्वासन देना चाहिए। यह प्रस्ताव कैसा बने, इसके सम्बन्ध में भारत सरकार की राय जानने की कोशिश की गई है। मानव अधिकारों के उल्लंघन का प्रश्न शीत युद्ध का प्रश्न न बने, इसके लिए प्रयत्न किया जा सकता है, अगर भारत सरकार इस बात का संकेत दे कि यह प्रस्ताव किस रूप में होना चाहिए। लेकिन अब तिब्बत के मानव अधिकारों के प्रश्न पर चीन की शक्ति को देखते हुए, हम चुप बैठे रहें, यह ठीक नहीं होगा।

इसके साथ ही विश्व के जनमत को भी हमें सीमा-विवाद के प्रश्न पर अपनी ओर करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। कल ऐसा वाद-विवाद में कहा गया कि चीन हमें हमारे पड़ोसियों से अकेला कर रहा है, अलग कर रहा है। नेपाल और बर्मा ने चीन के साथ समझौता किया है, हमें कोई शिकायत नहीं है। वे समझौता करें। मगर उन्हें अनुभव से लाभ उठाना चाहिए।

चीन का आज तक का सारा इतिहास समझौतों को तोड़ने का इतिहास है। चीन के प्रधान मंत्री नई दिल्ली में आ कर कह गये कि हम भूटान और सिक्किम के साथ भारत के सम्बन्धों का सम्मान करेंगे। उसका टेपरिकार्ड भी मौजूद है। मगर पीकिंग रिव्यू ने सम्बन्धों के पहले 'प्रापर' शब्द लगा दिया, उचित शब्द लगा दिया। नेपाल और बर्मा अगर आज चीन के इरादों को न समझते हुए और भयभीत हो कर, जिसके लिए भारत सरकार भी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकती, चीन पर आँखें मूंद कर विश्वास करेंगे तो उन्हें भविष्य में संकट का सामना करना पड़ सकता है। हमारा कर्तव्य है कि हम चीन के इरादों से पड़ोसियों को परिचित कराएं, विश्व में प्रचार करें, विशेष कर ब्रिटेन में जहाँ चीन के साथ जो हमारा सीमा-विवाद है, उसके सम्बन्ध में बड़ी गलतफहमियाँ हैं। ब्रिटेन के लोग बहुत कानूनदां बनते हैं। अब

हमारी रिपोर्ट से हमारा पक्ष कानून की दृष्टि से भी बड़ा प्रबल हो गया है। इस रिपोर्ट का दुनिया के अन्य देशों में भी प्रचार किया जाना चाहिए। अफ्रीका के नए देश जो स्वतन्त्र हो गये हैं, हम उनको भी चीन के इरादों से परिचित कराएं और उनकी आजादी का स्वागत करते हुए चीन के विस्तारवाद के रूप में जो नया साम्राज्यवाद पैदा हो रहा है उससे उनको सावधान करें, इस बात की भी आवश्यकता है।

(लोकसभा, 21 फरवरी 1961)

11. क्या लेन-देन संभव है ?

श्री सुधीर घोष ने अपने भाषण में कुछ अच्छी बातें कहीं और कुछ बातों वह पटरी से उतर कर कहने लगे कि कम्युनिष्ट चीन के साथ लेन-देन के आधार पर समझौता हो सकता है। 'गिव ऐण्ड टेक' के बारे में, मैं उनसे जानना चाहूँगा कि चीन क्या देने वाला है?

चीन एटम बम दे सकता है, चीन हमारी प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला सकता है, चीन अपमान दे सकता है और चीन से क्या पाना है? चीन से अब और हम क्या चाहते हैं? जो कुछ मिला है, क्या वह काफी नहीं है? इसमें समझौते का सवाल नहीं है, भारत की सार्वभौमिक सत्ता, भारत की अखंडता, यह कोई सौदे की चीज नहीं है। चीन आक्रमणकारी है। पहले वह भारत की भूमि खाली करके चला जाए। अगर हमारी सीमा के संबंध में उसके कुछ दावे हैं, तो हम उन पर विचार करने के लिए तैयार हैं, चर्चा करने के लिए तैयार हैं। लेकिन आक्रमणकारी ने बल प्रयोग करके हमारे झगड़े के स्वरूप को बदल दिया है, वह पहले हमारी सारी भूमि को खाली करके चला जाय। श्री सुधीर घोष कहते हैं कि यदि उनको अधिकार दे दिया जाए, तो वे नान मिलिटरी पोलिटिकल सोल्यूशन कर सकते हैं। मैं समझता हूँ कि विदेश मंत्रालय उनकी खाहिश पर विचार करेगा। वह वाशिंगटन और मास्को में काफी घूमे हैं।

अगर अब वह पीकिंग जाना चाहते हैं तो उन्हें छूट दी जानी चाहिए ताकि वे कम्युनिष्ट चीन के नेताओं को समझा सकें। मगर ऐसा लगता है कि अभी इस संसद में कुछ ऐसे सदस्य हैं जो हवा में उड़ रहे हैं जो वास्तविक धरती पर पाँव रख कर चलने को तैयार नहीं हैं। हमने चीन से लड़ाई नहीं माँगी। युद्ध हमारे ऊपर थोपा गया है। चीन मित्रता चाहता है, इसका कोई भी प्रमाण नहीं है। इस समय, अगर हम लेने और देने की बात करेंगे तो उसका एक ही अर्थ हो सकता है कि हम भारत की भूमि को चीन को समर्पित करने के लिए तैयार हैं। अक्साईचिन दे कर जो चीन से समझौता करना चाहते हैं, वे चीन के इरादों को नहीं समझते। तिब्बत को चीन को दे कर हमने मित्रता करनी चाही और उसका दुष्परिणाम आज हमारे सामने है। मगर इतिहास को दोहराने नहीं दिया जायेगा और भारत सरकार को चीन के सामने झुकने नहीं दिया जायेगा। जितनी जल्दी हम इस तथ्य को समझ लें कि हमें चीन से अपनी रक्षा और लोकतंत्र को सुरक्षित रखने के लिये टकराना होगा, उतनी ही जल्दी आवश्यक है कि हम उसके अनुरूप अपनी सैनिक शक्ति का संग्रह करें,

औद्योगिक विकास करें और विदेशों में अपने प्रचार को प्रभावी बनायें। नई दिल्ली की सरकार दृढ़ता के साथ उसको अमल में लाये। हमारे प्रधान मंत्री जी कुछ डरते हुए, कुछ झिझकते हुए, कुछ टटोलते हुए आगे बढ़ते हैं। यह ठीक नहीं है जितने आत्मविश्वास के साथ वह सदन में बोलते हैं, उतने ही आत्मविश्वास के साथ वह विदेश नीति बनायें और उसको अमल में लायें, इसी बात की आज आवश्यकता है।

(राज्य सभा, 22 दिसंबर 1964)

12. कम्युनिष्टों की निष्ठाएं

गृह मंत्री जी ने पीकिंग परस्त कम्युनिष्टों की राष्ट्र-विरोधी कार्यवाहियों के सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया है, उससे इस बात की पुष्टि हो गई है कि हमारे देश में वाम मार्गी कम्युनिष्टों के रूप में ऐसे तत्त्व सक्रिय हैं जो देश की स्वाधीनता और सुरक्षा के लिए संकट हैं। मुझे सरकार से इतनी ही शिकायत है कि उसने इन राष्ट्रद्रोही तत्त्वों के इरादों और कार्यों को उद्घाटित करने के लिए इतना समय क्यों लिया?

कम्युनिष्ट एक क्रान्तिकारी विचारधारा में विश्वास करते हैं, लेकिन वह विचारधारा यदि देश की सीमाओं तक ही केन्द्रित रहे और समाज के परिवर्तन के लिए हिंसात्मक उपायों का अवलम्बन न करें तो एक विचारधारा के नाते उससे संघर्ष किया जा सकता है। किन्तु साम्यवाद एक जीवन-दर्शन नहीं है, वह मानव की स्वाधीनता और गरिमा को, छल से, बल से, शस्त्रों के प्रयोग से समाप्त करने का एक विश्वव्यापी षड्यंत्र है और यही कारण है कि जब देशद्रोह करते लज्जा लगनी चाहिए, गद्दारी की भाषा बोलते हुए शर्म से सिर झुक जाना चाहिए, हमारे कम्युनिष्ट दोस्त क्रांति के नशे में देशद्रोह को देशद्रोह मानने के लिए तैयार नहीं हैं। अभी उस दिन हमने सदन में श्री नौशेर अली का भाषण सुना, वह भाषण जान बूझकर दिया गया था, वह भाषण सदन को और देश को चुनौती था। यदि गृह मंत्रालय यह पुस्तिका प्रकाशित न भी करता तो भी उनका एक यह भाषण पर्याप्त था, इस बात को साबित करने के लिए कि उनकी निष्ठाएं हिमालय के उस पार हैं और क्रान्ति के आवरण में वे देश के साथ विश्वासघात करने में संकोच नहीं करेंगे; इतना ही नहीं कि वे उसे अपना कर्तव्य समझेंगे, उसमें गौरव मानेंगे। ऐसे तत्त्वों के साथ क्या किया जाये? अगर कुछ सदस्य मुझे गलत न समझें तो मैं एक उदाहरण देना चाहता हूं। अगर भारत में ऐसी पार्टी खड़ी हो जाय - मैं व्यक्तियों की बात नहीं कह रहा हूं, पार्टी की बात कह रहा हूं - जो कहे कि पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण नहीं किया, जो पाकिस्तान के राष्ट्रपति की तस्वीरें लगाए और जुलूसों में यह नारे लगाए कि चिंता न करो, चार महीनों में पाकिस्तान आने वाला है, तो इस देश की जनता, इस देश की सरकार क्या रवैया अपनाएंगी? वैसे मैं चीन को और पाकिस्तान को एक ही श्रेणी में रखने के पक्ष में नहीं हूं। पाकिस्तान कल तक हमारा भाग था और हम पाकिस्तान से अपने संबंध सुधारना चाहते हैं। लेकिन भारत की सीमाओं के बाहर अपनी निष्ठाएं केन्द्रित रख कर यदि कोई वर्ग संगठित रूप से इस संकट-काल में देश के मनोबल को तोड़ने का और शत्रु का बल बढ़ाने का प्रयत्न करता है तो शासन चुप नहीं रह सकता। आश्चर्य

की बात यह नहीं है कि शासन अब क्यों जागा, आश्चर्य की बात यह है कि सरकार अब तक चुप क्यों रही?

तेनाली में वाम मार्गी कम्युनिष्टों ने अपने सम्मेलन में माओ-त्से-तुंग का चित्र लटकाया था। चीन और भारत के बीच में युद्ध की स्थिति है, हमारे विशाल भूभाग पर कम्युनिष्ट चीन का कब्जा है, देश में संकट काल की घोषणा है, देश और यह सदन इस पवित्र संकल्प में बँधे हुए हैं कि तब तक हम चैन से नहीं बैठेंगे जब तक चीन के चंगुल में चली गई एक-एक इंच भूमि को मुक्त नहीं करा लेंगे। इस अवसर पर माओ-त्से-तुंग का चित्र लटकाना क्या निष्ठाओं को प्रकट करने के लिये काफी नहीं है? केवल तेनाली सम्मेलन में ही नहीं, बागडोगरा, दार्जिलिंग, बरहमपुर मुर्शिदाबाद, महाराष्ट्र में बम्बई, गुन्टुर और नादिया जिले में माओ-त्से-तुंग के चित्र जहाँ प्रेस कान्फ्रेंस हुई थीं, वहाँ लगाए गए थे। जब अखबार वालों को बुलाया गया तब चित्र उतार दिये गये थे और जब अखबार वालों ने बताया यह जगह खाली है, यहाँ किसका चित्र था तो कम्युनिष्ट नेता जवाब नहीं दे सके। वहाँ माओ-त्से-तुंग का चित्र लगा था।

(राज्य सभा, 25 मार्च 1965)

13. भारत की विदेश नीति

सोवियत रूस हमारा मित्र है। संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर के सवाल पर उसने जो हमारा साथ दिया उसके लिए आभारी हैं। लेकिन सोवियत रूस भी अपने हित में ऐसे कार्य करता रहा है जो हमें पसन्द नहीं हैं और जो किसी औचित्य की कसौटी पर खरे नहीं सिद्ध किये जा सकते। पाकिस्तान को हथियार देना, क्या सोवियत रूस के नेता या उनके कोई समर्थक जो इस सदन में और बाहर बैठे हुए हैं, यह बात दिल पर हाथ रख कर कह सकते हैं कि सोवियत रूस द्वारा पाकिस्तान को दिये गए हथियार बंगला देश में कार्य में नहीं आ रहे हैं? आ रहे हैं। मगर सोवियत रूस के नेताओं ने हथियार दिये, पाकिस्तान को इस आधार पर कि पाकिस्तान कहीं चीन के चंगुल में न चला जाए। अमेरिका पाकिस्तान को हथियार देता था, इस आधार पर की कहीं, पाकिस्तान रूस के चंगुल में न चला जाए। और हम इस संकट में न फंस जाए।

हर एक देश अपने स्वार्थ के साथ चल रहा है। हमारा भी कोई स्वार्थ है या नहीं? लोकतन्त्र की दुहाई देने वाले सोवियत रूस ने चेकोस्लोवाकिया में फौजें भेज दीं। दुनिया में किसी ने उंगली नहीं उठाई।

अमेरिका वियतनाम में जो कुछ करना चाहता है वह कर रहा है। निन्दा करने के अलावा उसके हाथ रोकने वाला कोई नहीं है। अगर स्वाधीनता के बाद हमने शक्ति की साधना की होती, विदेश नीति को हमने अपनी औद्योगिक, सैनिक और अपनी सामाजिक शक्ति को बढ़ाने का साधन बनाया होता, अगर भारत के 50 करोड़ लोगों में हमने यह मंशा जगाई होती कि या तो भारत महा राष्ट्र के रूप में जीवित रहेगा - महा राष्ट्र से मेरा मतलब महा राष्ट्र प्रदेश से नहीं है - महान राष्ट्र के रूप में जीवित रहेगा, नहीं तो तीसरे दर्जे की शक्ति बन कर दुनिया के किसी कोने में दुबका रहेगा, तो आज यह स्थिति नहीं होती। श्री अमृत नाहटा इस समय सदन में नहीं हैं, वह कहते हैं कि चीन के पास एटम बम है, इसका कोई असर नहीं हुआ, चीन की जनसंख्या इतनी ज्यादा है, इसका भी कोई परिणाम नहीं हुआ, किस बात का परिणाम हुआ है? राष्ट्रपति निक्सन के जो संचार निदेशक हैं, उनके वक्तव्य का एक अंश मैं पढ़कर सुनाना चाहता हूँ :

“यह चीन की परमाणु शक्ति और उसकी विशाल जनसंख्या ही है जिसके कारण श्री निक्सन उस देश के साथ संबंध सुधारने को चिंतित हुए।”

चीन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। काश, यह शब्द भारत के लिए भी कहे जा सकते कि 50 करोड़ लोगों का देश, प्राकृतिक साधनों से भरपूर धरती, एक भौगोलिक महत्त्व का स्थान, आज कोई भारत की उपेक्षा नहीं कर सकता। मगर मास्को जब चाहता है तब हमारी उपेक्षा कर देता है। पाकिस्तान के प्रति वाशिंगटन का रवैया छुपा हुआ नहीं है। चीन हम पर आक्रमण कर चुका है। हम दुनिया के नक्शे पर कहाँ हैं? हमारी विदेश नीति ने हमें कहाँ खड़ा किया है? क्या इसके बाद भी विदेश नीति को सफल माना जा सकता है?

भारत एक स्वतन्त्र विदेश नीति पर चले, यह आवश्यक है, लेकिन विदेश नीति लचीली होनी चाहिए, जड़ नहीं। भारत की विदेश नीति यथार्थवादी होनी चाहिए, कल्पना के लोक में विचरण करने वाली नहीं। 1962 में जब कम्युनिष्ट चीन ने हम पर हमला किया तो हमारी आंखें खुली और हमने शक्ति बटोरी और 1965 में उस शक्ति का थोड़ा प्रदर्शन भी किया, मगर श्री लालबहादुर शास्त्री चले गये और देश फिर जड़ता की स्थिति में आ गया।

आज हम इस स्थिति में नहीं हैं कि बंगला देश के बारे में कोई प्रभावी कार्यवाही कर सकें। मैं थक गया हूँ विदेश मंत्री जी का यह बयान सुनते-सुनते कि जब समय आयेगा तब मान्यता दी जाएगी। वह समय कब आएगा? वह समय आने वाला है या समय बीत रहा है? आखिर बंगला देश के नेता इस बात को ज्यादा जानते हैं कि मान्यता देना उसके लाभ के लिए है या नहीं? मगर हमारी सरकार बंगला देश के नेताओं से भी ज्यादा भला चाहती है। हम कहते हैं कि बंगला देश को मान्यता देना बंगला देश के हित में नहीं है। मुझे याद है कि नेहरू जी भी यही कहा करते थे तिब्बत के बारे में। जब हमने सदन में यह मामला उठाया कि तिब्बत का मामला संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया जाए और तिब्बत को स्वाधीन कराने का प्रयत्न किया जाए तो नेहरू जी कहा करते थे कि तिब्बत का मामला वहाँ उठाना तिब्बतियों के हक में नहीं है। मेरे पास शेख मुजीबुर्रहमान के एक निकटतम सहयोगी डॉ. मज्जुल इस्लाम का एक वक्तव्य है। उसको मैं पढ़कर सुनाना चाहता हूँ:

“उन्होंने भारत से बंगला देश को शीघ्र मान्यता देने का आग्रह किया। वैधानिक मान्यता का अभाव बाहर से हथियार हासिल करने के स्वतंत्रता सेनानियों के प्रयासों में बाधा पहुँचा रहा है।”

बंगला देश के सवाल पर हमें अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा। यह कोई नहीं कहता है कि हम पाकिस्तान से युद्ध करें, कोई नहीं कहता है कि बंगला देश में भारतीय सेनाएं भेजी जायें, लेकिन बंगला देश की स्वाधीन सरकार को मान्यता दे कर उसको हर तरह की सहायता देना, यह हमारा कर्तव्य है, केवल लोकतन्त्र की रक्षा के लिए नहीं, अपने हितों की रक्षा के लिए और राष्ट्रीय हितों का यह तकाजा है कि बंगला देश की सरकार को मान्यता दी जाए।

मुझे ताज्जुब हुआ जब अभी हमारे मार्क्सवादी कम्युनिष्ट के नेता भाषण कर रहे थे कि चीन के साथ सभी ने अपने सम्बन्ध सुधारे हैं लेकिन हमने नहीं सुधारे। चीन ने हमारे सिवा और किसी पर हमला किया है? हाँ, रूस के साथ भी वह छेड़छाड़ कर रहा है।

जब हम अपने ऊपर आक्रमण की बात कहते हैं तो उसमें तिब्बत पर आक्रमण भी शामिल है, लेकिन चीन ने अमेरिका पर हमला नहीं किया, चीन ने ब्रिटेन के साथ भी अतिक्रमण नहीं किया। चीन के शिकार तो हम हैं। हमने और देशों के साथ मित्रता करने की कोशिश की है और सरकार ने भी की थी। जब माओ त्से तुंग मुस्कराये थे तो नई दिल्ली की कली थोड़ी-थोड़ी खिलने लगी थी, मगर बाद में उस पर तुषारापात हो गया। अगर चीन हमारी सीमाओं को अनुल्लंघनीय मानता हो और अगर चीन हमारी प्रभुसत्ता का समादर करे तो चीन के साथ भी सम्बन्ध सुधारे जा सकते हैं।

(लोकसभा, 19 जुलाई 1971)

14. चीन के साथ बातचीत

अगर घर की स्थिति बिगड़ेगी तो पड़ोसी जरूर उसका लाभ उठाने की कोशिश करेंगे। लेकिन हम घर की स्थिति को बिगड़ने क्यों देते हैं? क्या घर की स्थिति को ठीक रखना हमारी जिम्मेदारी नहीं है? सीमा पर पिछला तनाव हुआ और तनाव में गोली तो कोई नहीं चली, मगर रक्षा मंत्री शहीद हो गए। रक्षा मंत्री जी का कद छोटा कर दिया गया है। मेरा मतलब है श्री अरुण सिंह जी से।

जब तनाव था तब रक्षा मंत्री नहीं बदले गए। जब सिच्युएशन डिफ्यूज हो गई तो श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह को रक्षा मंत्रालय सौंप दिया गया। यह कैसी स्थिति है कि जब तनाव होता है तो हमारे प्रधान मंत्री दूसरा रक्षा मंत्री ढूँढते हैं। शांति के काल में तो रक्षा मंत्रालय प्रधान मंत्री के पास रहना चाहिए।

मैं चीन के बारे में एक बात कहूँगा। दो वर्ष पहले हमारे राष्ट्रपति जी का जब भाषण हुआ था तो उन्होंने 17 जनवरी 1985 को कहा था:

“चीन से हमारे सम्बन्धों में सुधार नजर आता है। हमें सीमा के सवाल का हल देखने के लिए अध्यवसाय करना होगा।”

अब दो वर्ष में हालत बदल गयी। इस बार राष्ट्रपति जी ने जो कुछ कहा है, उसको भी मैं उद्धृत करना चाहता हूँ:

“मेरी सरकार चीन के साथ सीमा के सवाल को न्यायपूर्ण और शांतिपूर्ण ढंग से हल करने का प्रयास करती रहेगी। यह सवाल हमारे संबंधों के पूर्ण सामान्यीकरण के लिए निर्णायक बना हुआ है।”

अगर दो वर्ष पहले संबंध सुधर गए थे तो बिगड़ क्यों गए? सीमा पर तो बातचीत चल रही है, सात चक्र हो चुके हैं, 1978 में चीन के साथ समझौता हुआ था कि जब तक सीमा का प्रश्न बातचीत से हल किया जाएगा तब तक सीमा पर यथास्थिति और शांति बनाये रखी जायेगी। चीन ने उस समझौते को क्यों तोड़ा? अरूणाचल में चीन ने पहली बार कब प्रवेश किया? उसके बारे में तत्काल संसद को, देश को विश्वास में क्यों नहीं लिया गया? कुल मिलाकर चीन ने अरूणाचल में कितनी घुसपैठ की है?

इससे भी बड़ा सवाल यह है कि चीन के रवैये में यह परिवर्तन क्यों हुआ? अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति बदल रही है। उस परिस्थिति पर, बदली हुई परिस्थिति पर हमें नजर रखनी चाहिए। पाकिस्तान के प्रति सजग रहें, सतर्क रहें, मगर भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। पाकिस्तान के मित्र हैं तो भारत भी मित्र विहीन नहीं है। भारत को आत्मविश्वास के साथ अपनी विदेश नीति का संचालन करना चाहिए।

(राज्य सभा, 2 मार्च 1987)

15. विश्व राजनीति में परिवर्तन

आज जब मैं विदेश मंत्रालय के कार्य-कारण पर चर्चा आरंभ करने के लिए खड़ा हूँ तो मुझे 1962 और 1967 का समय याद आ रहा है। उन दिनों मैं इसी सदन का सदस्य था। हमारे प्रथम प्रधान मंत्री विदेश मंत्री भी थे, सदन में नियमित रूप से अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति के बारे में चर्चा होती थी। चर्चा का प्रस्ताव स्वयं पंडित जी की तरफ से आया करता था। अब तो वह परम्परा टूट गयी लगती है। अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति और उसमें भारत सरकार की नीति, यह ऐसा विषय है जो राष्ट्रीय हितों के साथ जुड़ा है और राष्ट्रीय हित चाहे हम उधर बैठे हों या इधर बैठे हों, हमें आपस में जोड़ देते हैं। किसी विशेष परिस्थिति में राष्ट्रीय हित क्या हैं, इसकी परिकल्पना में थोड़ा-बहुत मतभेद हो सकता है। लेकिन हित जब हमें जोड़ते हैं तो वे विदेश नीति को एक स्थायित्व प्रदान करते हैं। ऐसा स्थायित्व जिसमें जड़ता नहीं होती, गतिशीलता होती है जिसमें निरन्तरता होती है, लेकिन दिशाहीनता नहीं होती। मैं देख रहा हूँ कि विदेश नीति पर चर्चा के अवसर बहुत कम हो गये हैं। केवल सदन में ही चर्चा पर्याप्त नहीं है। यह एक ऐसा विषय है कि सदन के बाहर भी इस पर लगातार विचार-विनिमय होना चाहिए।

इसी लिए मैंने विदेश मंत्री, श्री पी.वी. नरसिंहराव जी से अनुरोध किया था कि विदेश मंत्रालय से जुड़ी हुई सलाहकार समिति की बैठक भारत और नेपाल के संबंधों में जो संकट पैदा हो गया है - उस पर चर्चा करने के लिए बुलाई जाए। मैं चाहता था कि वह बैठक सदन में मंत्रालय की माँगे आने से पहले और इस सदन में मंत्रालय के कार्य-कारण पर चर्चा होने से पहले हो। लेकिन मुझे खेद है कि श्री पी.वी. नरसिंहराव जी ने मेरा अनुरोध स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मुझे जवाब दे दिया कि मंत्रालय के बारे में चर्चा होने जा रही है। सदन में तो चर्चा होगी, लेकिन नेपाल और भारत के संबंध अचानक इस तरह क्यों बिगड़ गये? इसके बारे में अनौपचारिक चर्चा जरूरी है। मुझे नेपाल का पक्ष बताने की कोशिश की गई है। उनकी जो नई दिल्ली में राजदूत महोदया है, वह लोगों से मिल रही हैं। सबको बता रही हैं, लेकिन मुझे अपनी सरकार का पूरा पक्ष मालूम नहीं है। यह स्थिति अच्छी नहीं है।

हमें समस्याओं की पृष्ठभूमि चाहिए, हमें विदेश नीति के बारे में लगातार एक दूसरे के सम्पर्क में रहने की आवश्यकता है। श्री नटवर सिंह जी ने ठीक कहा। मैं उनके भाषण को पढ़ रहा था - कि देश में आम तौर पर, मोटे तौर पर विदेश नीति के बारे में एक राष्ट्रीय सहमति रही है। यह ठीक है कि कुछ लोग रहे हैं जो चाहते थे कि

हम इस गुट में मिल जाएं, कुछ लोग चाहते थे कि हम उस गुट में मिल जाएं, लेकिन भारत का बहुमत, भारत में चिंतन की मुख्यधारा, इसमें विरोधी दल भी शामिल थे, इस नीति से सहमत थे कि हम किसी सैनिक गुट में नहीं मिलेंगे और हमें हर प्रश्न का स्वतंत्र रूप से चिंतन करके फैसला करना है। आज तो उस नीति की एक तरह से विजय हो गई है।

गुटनिरपेक्षता का अर्थ था संसार की विभिन्नता को स्वीकार करना; विभिन्न सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाओं को स्वीकार करते हुए उनके सहअस्तित्व की कल्पना करना।

आज अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति में जो परिवर्तन हुए हैं, वे बड़े सुखद हैं। बड़े आश्चर्यजनक और बड़े नाटकीय परिवर्तन हुए हैं। कभी-कभी तो बदली हुई दुनियां पहचान में नहीं आती, लेकिन दुनियां बदली है। दो महा शक्तियों में समझौता हो गया, पहली बार ऐसा समझौता हो गया जिसमें एक विशेष तरह के अणु अस्त्रों का नियंत्रण करने की नहीं, घटाने की बात की गई है। शस्त्र घटाये जा रहे हैं और इसके लिए निरीक्षण की व्यवस्था की गई है। रूस के प्रतिनिधि अमरीका में जाकर देख रहे हैं कि इंटर-कांटिनेंटल बैलिस्टिक मिसाइल डिसमेंटल कर दी गई हैं या नहीं और अमेरिका वाले रूस में जाकर देख रहे हैं। कुछ समय पहले इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

सोवियत संघ ने एकतरफा अपनी सेना में कटौती की घोषणा की है और कटौती पर वह अमल कर रहा है। आई.एन.एफ. का समझौता एक ऐतिहासिक समझौता है और सचमुच में विचित्र बात यह है कि उस समझौते पर दस्तखत राष्ट्रपति रीगन ने किये जो यह कहते थे कि 'सोवियत संघ इज एन एविल एंपायर' और उस समझौते पर दस्तखत किए सोवियत संघ के नेता ने जो सोवियत संघ सोचता था कि हमें सारी दुनिया को लाल रंग में रंगना है।

जिस तरह से श्री जवाहरलाल नेहरू ने गुटनिरपेक्षता की नीति की परिकल्पना करके, उस शीत युद्ध में बड़े साहस और दूरदर्शिता का कार्य किया था, राष्ट्रपति गोर्बाचोव भी बड़ी हिम्मत का कार्य कर रहे हैं। इस समझौते का दुनियां में और भी परिणाम हुआ है। क्षेत्रीय विवाद हल हुए हैं। ईरान और इराक की लड़ाई बंद हो गई। खाड़ी में बड़ी शांति है। अफगानिस्तान से सोवियत सेना चली गई। अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए था। अब मैं सारे इतिहास में जाना नहीं चाहता। उन दिनों मैं न्यूयार्क में था। सैनिक हस्तक्षेप की आवश्यकता भी नहीं थी, लेकिन उस

समय सोवियत संघ ने एक फैसला किया और बाद में उन्हें लगा कि यह गलती हो गई। अब क्यूबा की सेनाएं अंगोला से जा रही हैं। कंपूचिया से वियतनाम की सेनाएं हट जाएं, इस संबंध में सार्थक बातचीत हो रही है। पी.एल.ओ. ने इजराइल के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया है। अमेरिका ने पी.एल.ओ. के साथ बातचीत शुरू कर दी है। यह ठीक है कि इजरायल अड़ा हुआ है, उसके रवैये में परिवर्तन होना चाहिए। इजरायल अरबों के जिस भू-भाग पर अधिकार करके बैठा है, उसका कोई औचित्य नहीं है। उससे इजरायल को जाना पड़ेगा। अगर पश्चिम एशिया के सवाल पर कोई अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन हो, जिसके लिए भारत जोर दे रहा है तो इस संबंध में रास्ता निकल सकता है। संसार में नए समीकरण उत्पन्न हो रहे हैं, पुराने भेदभाव भुलाए जा रहे हैं, नए स्नेह सूत्र जोड़े जा रहे हैं।

इन बदलते हुए समीकरणों में हमारी विदेश नीति भी और हमारी कूट नीति भी बड़ी गत्यात्मक होनी चाहिए। कभी-कभी लगता है कि हमारी कूट नीति इस चुनौती का ठीक तरह से जवाब नहीं दे पा रही है। अफगानिस्तान से जब रूस की सेनाएं चली जाएंगी, तब क्या होगा, क्या इसे गहराई से सोचा गया था? मैं मानता हूँ। अमेरिका ने जो जेनेवा समझौता किया था उसका ईमानदारी से पालन नहीं कर रहा है। जिस तरह से मुजाहिदों को मदद दी जा रही है वह तो अफगानिस्तान में शांति लाने का, अफगानिस्तान को एक गुट निरपेक्ष देश के रूप में निखारने का तरीका नहीं है। मगर कोई कुछ कर नहीं पा रहा है। हम भी असहाय बने हुए हैं। सिवाय इसके कि सुरक्षा परिषद में हम अपनी बात जोर से कह दें, हमारी भूमिका क्या है? शायद हमने सोचा होगा कि सोवियत संघ इतनी जल्दी नहीं जायेगा।

श्री नटवर सिंह जी अफगानिस्तान के पुराने शाह से मिलते रहे हैं, लेकिन मुझे नहीं लगता कि हम इस समय अफगानिस्तान में कोई ऐसी सार्थक भूमिका निभा पा रहे हैं। ठीक है, हम अफगानिस्तान की सरकार को समर्थन दें, मगर हम यह भी माँग कर रहे हैं कि वह सरकार विशाल आधार होनी चाहिए, तो विशाल आधार सरकार में जो और तत्व शामिल होंगे, जो और गुट शामिल होंगे क्या उनसे हमारे कोई संपर्क हैं? वे भारत विरोधी नहीं हैं मगर हम उन्हें अपना विरोधी गिन रहे हैं, यह उचित नहीं है। इसी तरह से कल सोवियत संघ और चीन के संबंध सुधर सकते हैं। सुधरने चाहिए। हमारे लिए एक नई परिस्थिति पैदा होती है। आज सारे गुट निरपेक्ष आंदोलन के सामने एक नई परिस्थिति पैदा हो गई है। जब तक शीत युद्ध था, महाशक्तियों में आपस में होड़ थी, विरोध था, हमें लगता था कि हमारे पास एक मिशन है। अब तो लगता है कि जैसे करने के लिए कुछ कार्य ही नहीं है। मैं हाल ही में संयुक्त राष्ट्र संघ

में था। मैं जनरल असेंबली की बैठक में देख रहा था कि गुट निरपेक्ष राष्ट्र नई भूमिका की तलाश कर रहे थे। अब भारत को पहल करनी है कि गुट निरपेक्षता को एक नई रेलवे, एक नई प्रासंगिकता दें। गुट निरपेक्षता कोई मंत्र नहीं है, एक ढाँचा है, एक दिशा-निर्देश है।

दक्षिण-दक्षिण में जितना सहयोग होना चाहिए, उतना सहयोग नहीं है। एक नई अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के लिए जितना प्रयत्न होना चाहिए, उतना प्रयत्न नहीं है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि जो शांति के तकाजे हैं, शांति की बात करने वाले, जब शांति सचमुच में आ जाती है तो उन तकाजों को पूरा करते हुए नहीं दिखाई देते।

मुझे याद है, सोवियत संघ के नेता आए थे, 1989 की बात है। उन्होंने भाषण दिया। उनको यह कहना पड़ा कि यह अफवाह फैलाई जा रही है कि सोवियत संघ भारत का साथ छोड़ देगा, यह अफवाह गलत है, हमारी और आपकी मित्रता कुछ स्थायी आदर्शों के आधार पर कायम हुई है। सोवियत संघ के कुछ क्षेत्रों में यह प्रश्न पूछा जा रहा है कि नीति बदल रही है, हमारा क्या होगा? अब सोवियत रूस अगर चीन का मित्र हो जाएगा तो हमारा क्या होगा? पहले से हम इस बात पर जोर देते रहे हैं और इसमें सच्चाई है कि हमें अपने पैरों पर खड़ा होना होगा। हमें भी नए समीकरण खोजने हैं। इस बदलती हुई, दुनिया में अपनी कूट नीति की ऐसी गत्यात्मकता देनी होगी कि ये जो बदलते हुए समीकरण हैं, ये हमारे लिए सुअवसर भी बन जाएं और चुनौती के रूप में हम इनका उपयोग करके जैसा विश्व बनाना चाहते हैं, और जिस तरह भारत के राष्ट्रीय उद्देश्यों को पूरा करना चाहते हैं, उनको पूरा कर सकें। आखिर में तो विदेश नीति का लक्ष्य राष्ट्र की स्वतंत्रता की रक्षा करना है, सीमाओं को अक्षुण्ण रखना है और देश के विकास के लिए जो रास्ता हमने चुना है, उस रास्ते पर अबाध गति से बढ़ने की परिस्थिति पैदा करना है। इन उद्देश्यों में कोई मतभेद नहीं हो सकता।

प्रधान मंत्री जी चीन गए थे, पाकिस्तान गए थे। ये देश हमारे पड़ोसी हैं। चीन के साथ हमारे संबंधों का एक बड़ा कटु अध्याय है। मैं स्वयं 1978 में चीन गया था, बातचीत अच्छी हुई, मगर उन्होंने उसी बीच वियतनाम पर हमला करके सारी यात्रा पर पानी फेर दिया। इस बार इस तरह की कोई दुर्घटना नहीं हुई है, मुझे संतोष है। लेकिन किसी विदेश-यात्रा की सफलता की कसौटी यह नहीं हो सकती है कि किस नेता का हाथ किस नेता के हाथ में कितने मीनट रहा। जहाँ हाथ ही नहीं मिलाया गया, आदाब अर्ज किया गया, क्या हम मान

लें कि वहाँ बातचीत, यात्रा बिल्कुल विफल हो गई? संबंधों की सार्थकता की यह भी कसौटी नहीं है कि दो देशों के प्रधान, राष्ट्राध्यक्ष, प्रधान मंत्री एक-दूसरे को प्रथम नाम से संबोधित करते हैं। अगर मैं श्री पी.वी. नरसिंहराव जी की जगह कहूँ - नरसिंह राव : आप कैसे हैं? और फिर नरसिंह राव जी कहें - अटल, मैं ठीक हूँ। आप कैसे हैं?

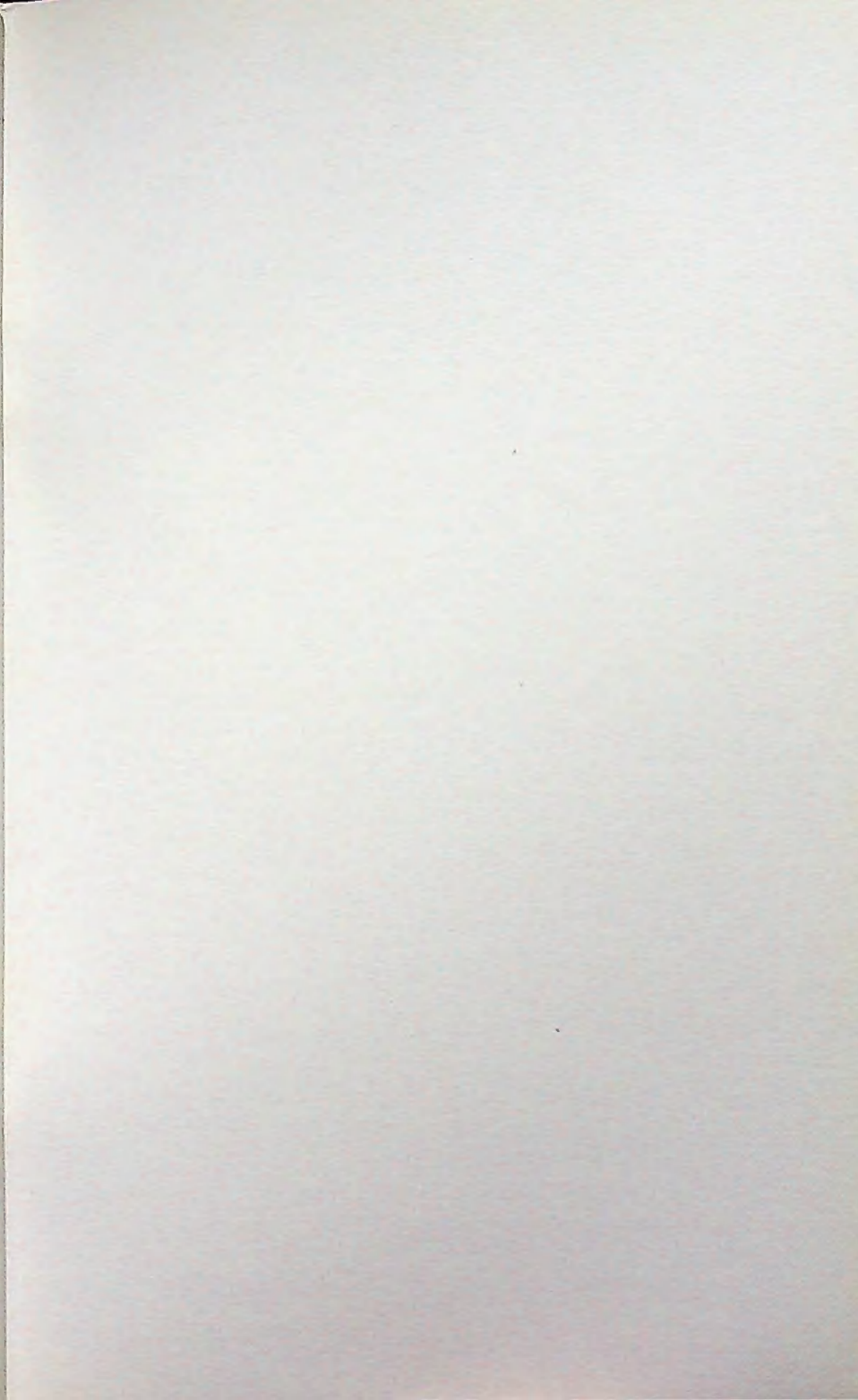
यह पर्याप्त नहीं है, इसका लाभ है एक सीमा तक। मगर देश के हितों में अगर टकराव होता है और स्वभाव में सामंजस्य नहीं बैठाया जा सकता है तो संबंध बिगड़ते हैं। प्रधान मंत्री जी की चीन यात्रा के संबंध में अभी तक एक प्रश्न अनुत्तरित है। मैंने उस दिन सलाहकार समिति में भी प्रश्न उठाया था कि जब प्रधान मंत्री चीन गए और चीन के नेताओं ने तिब्बत का सवाल उठा दिया तो उन्होंने तिब्बत के बारे में हमें कुछ कहने का मौका दे दिया था। मैं नेहरू जी का प्रशंसक हूँ, मगर तिब्बत को चीन का अंग मानकर नेहरू जी ने हिमालय जैसी भूल की थी। यह भूल किस कारण हुई, मैं इसमें विस्तार से जाना नहीं चाहता। तिब्बत को भी स्वतंत्र होने का अधिकार है। लेकिन भूल हो गई। तिब्बत को चीन का 'आटोनोमस रीजन' माना गया था। आज कहाँ है - आटोनोमी? मानवाधिकारों का उल्लंघन हो रहा है, मार्शल-लॉ घोषित कर दिया गया, बड़े पैमाने पर दमन है, आतंक है। अब चीन के नेताओं ने स्वयं तिब्बत का मामला उठाकर हमें मौका दे दिया था कि हम तिब्बत में मानवाधिकारों के उल्लंघन का सवाल उठाएं, उस तरफ चीनी नेताओं का ध्यान खींचे और मित्रता के वातावरण में यह चर्चा करें। हमने उस अवसर का लाभ नहीं उठाया। श्री दलाई लामा के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है, उस परिवर्तन का पीकिंग में स्वागत होना चाहिए। लेकिन तिब्बती अपनी पहचान के लिए, अपनी अस्मिता के लिए लड़ रहे हैं। चीन में सांस्कृतिक क्रांति के दिनों में जो गलतियाँ हुई थीं, घरेलू मामलों में जो भूलें हुई थीं, उनको सुधारने का प्रयत्न हो रहा है। चीन को चाहिए कि विदेशी मामलों में उन्होंने जो गलतियाँ की थीं, उनमें सुधार करें। इस ओर हमें उन्हें प्रवृत्त करना चाहिए। लेकिन अगर हम तिब्बत के बारे में मौन धारण करके बैठे रहे तो न हम तिब्बत के साथ और न अपने साथ न्याय करेंगे।

(राज्य सभा, 27 अप्रैल 1989)

शारदा पुस्तकालय

(संजीवनी शा. दा. के. द्र)

क्रमांक... 246.....



मैं जो कुछ कहता या प्रचारित करता हूँ वह भारत की ही देन है, उसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है। भारतीय मनीषियों के शांति, करुणा और मैत्री के सिद्धान्तों को इस पीढ़ी तक पहुँचाने का मैं माध्यम मात्र हूँ



जब तिब्बत स्वतंत्र था तो इसकी और भारत की हजारों कि.मी. सीमा पर कोई खतरा नहीं था, उसकी सुरक्षा की आवश्यकता न थी। जब तिब्बत परतंत्र हुआ तो भारत को इस सीमा की रक्षा करने में अपनी कई आर्थिक जरूरतों को भूलकर अत्यधिक व्यय करना पड़ रहा है। फिर भी खतरे की अनुभूति होती रहती है।

यदि तिब्बत एक शांति क्षेत्र हो जिसमें अस्त्र-शस्त्र या सेना न हो, मैत्री और करुणा से प्रेरित शिक्षा एवं धर्म की व्यवस्था हो जिससे शांति का वातावरण बने। यदि ऐसा तिब्बत बन सके तो इसका राजनीतिक महत्व उतना नहीं है, परंतु इससे भारत और चीन के बीच एक प्रकार की विश्वास सीमा बनेगी। ये दो बड़े देश जब स्थाई शांति में रह सके तभी एशिया में शांति हो सकती है।

—परम पावन दलाई लामा (1994)